Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतराग विज्ञान

भाग-4

छहढाला की चौथी ढाल पर

प्रवचन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतराग-विज्ञान

भाग – ४

कविवर पण्डित दौलतरामजी विरचित
छहढाला की चौथी ढाल पर
पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन

अनुवादक :
वैद्य गंभीरचन्द जैन, अलीगंज

सम्पादक :
पण्डित अभयकुमार जैन
शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य, एम. काम.

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, मुम्बई
एवं
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए – ४, बापूनगर, जयपुर – ३०२०१५

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रथम संस्करण : 5 हजार 200
(19 जून, 1988 श्रुत पंचमी
द्वितीय संस्करण : 3 हजार
(2 मार्च, 1999)

योग : 8 हजार 200

मूल्य : दस रुपए

टाइपसैटिंग :
त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स
ए–4, बापूनगर, जयपुर 302015
फोन : 515581, 515458

मुद्रक :
रायल प्रिन्टर्स
मालवीया नगर,
जयपुर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Thanks & Our Request

This shastra has been kindly donated by Dakshaben Sanghvi, Geneva, Switzerland who has paid for it to be "electronised" and made available on the internet.

Our request to you:

1) Great care has been taken to ensure this electronic version of Chha Dhala Pravachan Part 4 (Hindi) is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

Version Number	Date	Changes
001	9 November 2009	First electronic version

प्रकाशकीय

पण्डितप्रवर श्री दौलतरामजी कृत छहढाला की चौथी ढाल पर आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के प्रवचन प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

छहढाला दिगम्बर जैन समाज का सर्वाधिक लोकप्रिय सरल एवं बोधगम्य ग्रन्थ है। अध्यात्मरस से भरपूर यह ग्रन्थ 'गागर में सागर' की उक्ति को चरितार्थ करता है। आज भी दिगम्बर जैन समाज में सैकड़ों नर-नारियों को यह ग्रन्थ कण्ठस्थ है तथा दिगम्बर जैन समाज के सभी परीक्षा बोर्डों के पाठ्यक्रम में यह सम्मिलित है।

समयसार आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों की भाँति छहढाला भी पूज्य स्वामीजी को अत्यन्त प्रिय था तथा इस पर उन्होंने प्रवचन करके इसका मर्म जन-जन तक पहुँचाया है।

पूज्य स्वामीजी इस युग के सर्वाधिक चर्चित आध्यात्मिक क्रान्तिकारी महापुरुष हो गये हैं। वर्तमान में दृष्टिगोचर दिगम्बर जैनधर्म की अभूतपूर्व धर्मप्रभावना का श्रेय पूज्य स्वामीजी को ही है। उनका कार्यकाल दिगम्बर जैनधर्म के प्रचार-प्रसार का स्वर्णयुग रहा है।

यद्यपि आज वे हमारे बीच नहीं हैं, तथापि उनके प्रताप से निर्मित इकसठ दिगम्बर जिनमन्दिर एवं लाखों की संख्या में प्रकाशित सत्साहित्य हमें हजारों वर्षों तक सत्य का दर्शन कराता रहेगा।

श्री षट्खण्डागम भाग – 1, समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, बृहद्द्रव्यसंग्रह,

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मोक्षमार्गप्रकाशक, तत्त्वार्थसार, आत्मानुशासन, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, पद्मनन्दिपंचविंशतिका, समयसार कलशंटीका, नाटक समयसार, छहढाला आदि अनेक ग्रन्थों पर प्रवचनों के माध्यम से उन्होंने अनेकान्त, वस्तुस्वातन्त्र्य, कर्ताकर्म सम्बन्ध, क्रमबद्धपर्याय, निमित्त-उपादन आदि जैनदर्शन के आधारभूत सिद्धान्तों की आगम एवं युक्तिसंगत व्याख्या करके जिनशासन की अद्वितीय सेवा की है। उनके प्रवचनों के प्रभाव से जिनागम का प्रत्येक सैद्धान्तिक पहलू तथा जिनागम की प्रतिपादन शैली – स्याद्वाद, निश्चय-व्यवहार तथा प्रमाण-नय-निक्षेप आदि का स्वरूप भी जन-जन में चर्चित हो गया है।

अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों का सांगोपांग विवेचन उनकी वाणी की महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है। उनके द्वारा प्रतिपादित स्वानुभूति का स्वरूप, विषय एवं उसके पुरुषार्थ का विवेचन चिरकाल तक स्वानुभूति की प्रेरणा देता रहेगा।

स्वाध्याय के क्षेत्र में पूज्य स्वामीजी ने अभूतपूर्व क्रान्ति की है। उनके प्रवचनों के प्रभाव से समाज में स्वाध्याय की प्रवृत्ति को यथार्थ दिशा मिली है। नयविवक्षापूर्वक जिनवाणी का भावार्थ हृदयंगम करते हुए स्वाध्याय करने की परम्परा का विकास उन्हीं की देन है।

छहढाला ग्रन्थ पर उन्होंने गुजराती भाषा में प्रवचन किये थे, जिनका संकलन स्व॰ ब्र॰ हरिलालजी ने वीतराग-विज्ञान के नाम से किया था। लेखक महोदय ने प्रवचनों में आये विषयों को और अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य से उन्हें प्रश्नोत्तर के रूप में विभाजित किया है, जो कि इसी ग्रन्थ के अन्त में दिये गये हैं। इतने सुन्दर संकलन के लिए स्व॰ हरिभाई मुमुक्षु समाज में सदैव स्मरणीय रहेंगे।

प्रत्येक ढाल के प्रवचनों का संकलन एक-एक भाग के रूप में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सोनगढ़ से प्रकाशित हुआ है। इसका हिन्दी अनुवाद भी वीतराग-विज्ञान भाग – 1, 2, 3 के रूप में सोनगढ़ से प्रकाशित हो चुका है। चौथे भाग का अनुवाद स्व॰ पण्डित गंभीरचन्दजी जैन, अलीगंजवालों द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का मूल्य कम करने हेतु सहयोग प्रदान करनेवाले दातारों की सूची इसी पृष्ठ पर नीचे दी जा रही है, उनके भी हम आभारी हैं।

इस ग्रन्थ के संपादन का कार्य पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री ने किया है, अतः वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण तथा प्रकाशन व्यवस्था एवं प्रूफ रीडिंग हेतु श्री अखिल बंसल को भी धन्यवाद देता हूँ।

सभी लोग छहढाला के प्रतिपाद्य विषय को आत्मसात करके आत्मकल्याण के पथ पर चलें – यही भावना है।

– नेमीचन्द पाटनी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

विषय-सूची

१. चौथीढाल { पद्य }	–	07
२. छन्द १ पर प्रवचन	–	11
३. छन्द २ पर प्रवचन	–	15
४. छन्द ३ एवं ४ के पूर्वार्द्ध पर प्रवचन	–	34
५. छन्द ४ के उतरार्द्ध एवं छन्द ५ पर प्रवचन	–	42
६. छन्द ६ पर प्रवचन	–	64
७. छन्द ७ पर प्रवचन	–	72
८. छन्द ८ पर प्रवचन	–	84
९. छन्द ९ पर प्रवचन	–	101
१०. छन्द १० से १३ पर प्रवचन	–	137
११. छन्द १४ पर प्रवचन	–	175
१२. छन्द १५ पर प्रवचन	–	178
१३. भवसिन्धु तरो { पद्य }	–	181
१४. वीतराग–विज्ञान : प्रश्नोत्तर	–	182
१५. अपनी सुधि { पद्य }	–	208

छहढाला

चौथी ढाल

(सम्यग्ज्ञान व एकदेशचारित्र का स्वरूप, भेद एवं महिमा)

(दोहा)

सम्यक्श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्व–पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान।। १।।

(रोला)

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जानि, दुहू में भेद अबाधौ।।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत् होते हूँ, प्रकाश दीपक तैं होई।। २।।

तास भेद दो हैं, परोक्ष, परतछि तिन माँही।
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मन तें उपजाहीं।।
अवधिज्ञान मनपर्जय, दो हैं देश प्रतच्छा।
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये, जानैं जिय स्वच्छा।। ३।।

सकल द्रव्य के गुन अनन्त, परजाय अनन्ता।
जानै एकै काल प्रगट, केवलि भगवन्ता।।
ज्ञान समान न आन जगत में, सुख को कारण।
इह परमामृत जन्म–जरा–मृतु रोग निवारण।। ४।।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन माँहि, त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते।।
मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायौ।
पै निज आतम ज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ।। ५।।

तातैं जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपौ लख लीजै।।
यह मानुष पर्याय सुकुल, सुनिवौ जिनवानी।
इह विधि गये न मिलै, सुमणि ज्यो उदधि समानी।। ६।।

धन समाज गज बाज, राज ताके काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै।।
तास ज्ञान को कारण, स्व–पर विवेक बखानो।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो।। ७।।

जे पूरब शिव गये, जाहिं अरु आगे जैहैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं।।
विषय चाह दव दाह, जगत जन अरनि दझावै।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनाघान बुझावै।। ८।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रण्य–पाप फल मांहि, हरख बिलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।।
लाख बात की बात, यहै निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दन्द–फन्द, निज आतम ध्याओ।। ९।।

सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि, दृढ़ चारित्र लीजै।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै।।
त्रस हिंसा को त्याग, वृथा थावर न संहारै।
परवध कार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै।। १०।।

जल मृतिका बिन और, नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज बनिता बिन सकल, नारि सौं रहैं विरत्ता।।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दश दिशि गमन प्रमान ठान, तसु सीम न नाखैं।। ११।।

ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान, ठान अन सकल निवारा।।
काहू की धनहानि, किसी जय हार न चिन्तैं।
देय न सो उपदेश, होय अघ बनज कृषी तैं।। १२।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै।।
राग–द्वेष करतार, कथा कबहूँ न सुनीजै।
और हु अनरथदंड हेतु अघ, तिन्है न कीजै।। १३।।

धरि उर समता भाव, सदा सामायिक करिये।
परव चतुष्टय मांहि, पाप तज प्रोषध धरिये।।
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहिं अहारै।। १४।।

बारह व्रत के अतिचार, पन पन न लगावै।
मरण समय सन्यास धारि, तसु दोष नशावै।।
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहँ तैं चय नर जन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावै।। १५।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

वीतराग-विज्ञान भाग - 4

(छहढाला-प्रवचन)

चौथी ढाल पर प्रवचन

इस छहढाला ग्रन्थ में सर्वप्रथम मंगलाचरण में तीन जगत् में सारभूत वीतराग-विज्ञान को नमस्कार किया है। प्रथम ढाल में जीव ने अज्ञान से चार गति में कैसे-कैसे दुःख सहन किए, यह बतलाया है। पश्चात द्वितीय ढाल में उन दुःखों के कारण रूप मिथ्यात्वादि का स्वरूप बतलाकर उन्हें छोड़ने का और हित के पंथ में लगने का उपदेश दिया गया है, तत्पश्चात तृतीय ढाल में सम्यक्त्व का स्वरूप बतलाकर, उसकी अत्यन्त महिमा समझाकर शीघ्र उसकी आराधना करने को कहा गया है। अब इस चतुर्थ ढाल से सम्यक्दर्शन सहित सम्यग्ज्ञान का स्वरूप बतलाकर उसकी आराधना करने का उपदेश देते हैं:-

सम्यग्ज्ञान का स्वरूप एवं उसे ग्रहण करने का उपदेश

सम्यक्श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान।। १।।

तीसरी ढाल के अनुसार अत्यन्त महिमा पूर्वक सम्यग्दर्शन को शीघ्र धारण करके सम्यग्ज्ञान को भी हे भव्य जीव ! सेवन करो, उसकी आराधना करो। कैसा है सम्यग्ज्ञान ? जो अनन्त धर्म वाले स्व-पर पदार्थों का प्रकाशन करने के लिए सूर्य समान है। सम्यग्ज्ञान सूर्य से स्व-पर सर्व पदार्थों का सच्चा स्वरूप जाना जाता है। अतः हे भव्य जीव ! तुम सम्यक्त्व के साथ सम्यग्ज्ञान का भी आराधन करो।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यग्ज्ञान होता है। उनमें समय भेद नहीं है, तथापि सम्यग्ज्ञान की विशेष आराधना बताने के लिए ज्ञान की जुदी बात की है। सम्यग्दर्शन होने के बाद तुरन्त ही केवलज्ञान नहीं हो जाता, इसलिए ज्ञान की आराधना अलग से बतलाई है। क्षायिक सम्यग्दर्शन होने पर दर्शन की आराधना पूरी हो जाने पर भी अभी ज्ञान की आराधना अपूर्ण है, इसलिए उसकी आराधना करने के लिए कहा है।

चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें गुणस्थान में क्षायिक सम्यग्दर्शन होने के बाद सम्यग्दर्शन में तो शुद्धता की वृद्धि नहीं होती, किन्तु सम्यग्ज्ञान तो गुणस्थानुसार बढ़ता जाता है, गुणस्थानानुसार स्वतत्त्व को पकड़ने की ज्ञान शक्ति भी बढ़ती जाती है। इसीलिए सम्यक्दर्शन के बाद सम्यग्ज्ञान की आराधना कही है, यद्यपि एक गुण के लक्ष्य से भिन्न-भिन्न आराधना नहीं होती एवं आत्मस्वभाव के सन्मुख होकर उसकी आराधना करने पर, उसमें सर्व गुण की आराधना आ जाती है। तथापि गुण-भेद होने से शुद्धि के प्रकारों में विशेषता होती है, इसलिए दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भिन्न-भिन्न वर्णन किया है। श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य के पट्ट शिष्य उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थसूत्र में भी सर्व प्रथम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग बताकर, उन तीनों का भिन्न-भिन्न वर्णन किया है।

सम्यग्ज्ञान तो सूर्य है। सम्यग्दर्शन पूर्वक ज्ञान स्व-परप्रकाशक सूर्य है। सम्यग्दर्शन बिना अन्धकार है, सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान को ज्ञान नहीं कहते, क्योंकि वह स्व-पर के सच्चे स्वरूप का प्रकाशन नहीं करता और मोक्ष को नहीं साधता। स्व-पर समस्त पदार्थों के स्वरूप का प्रकाशन करने के लिए अर्थात् जानने के लिए सम्यग्ज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सूर्य के समान है। स्व और पर, चेतन और जड़ सभी पदार्थ अपने-अपने अनेक धर्मों सहित हैं। जितने धर्म सिद्ध भगवान में हैं, उतने ही धर्म प्रत्येक आत्मा में हैं। उन सबको सम्यग्ज्ञान जानता है। हे भव्य जीव! सुख प्राप्ति के लिए तुम इस सम्यग्ज्ञान का सेवन करो।

सम्यग्दर्शन में आत्मा अभेद है, परन्तु ज्ञान तो अनन्त गुणों को जानता है। स्व-पर, भेद-अभेद, शुद्धता-अशुद्धता सबको जानने की शक्ति सम्यग्ज्ञान में है। मैं आत्मा हूँ, मेरे में ज्ञान-आनंन्द है, मेरी परिणति में अमुक शुद्धता हुई है, अमुक रागादि शेष हैं, यह सब सम्यक्ज्ञान में ज्ञात होता है। नव तत्व को भी सम्यग्ज्ञान ही जानता है, सम्यग्दर्शन में नौ भेद नहीं, उसमें अभेदरूप एक परमार्थ आत्मा का ही स्वीकार है। उस अभेद में द्रव्य-गुण पर्याय के भेद भी वह नहीं करता। इसप्रकार सम्यग्दर्शन के साथ उत्पन्न होने वाला सम्यग्ज्ञान स्व-पर को यथार्थ जानता है और वीतरागता को साधता है। अतः इस वीतराग-विज्ञान का सेवन करो।

सर्वज्ञ परमात्मा ने आत्मा में अनन्त गुण देखे हैं, जिनकी गिनती का कोई माप नहीं ? ऐसे अनन्त गुण प्रत्येक आत्मा में हैं, उनका प्रकाशक सम्यक्त्व सहित सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान की अनुभूति में अनन्त-अनन्त गुणों का स्वाद एकरसपने समा गया है। अनन्त गुणों को यथार्थ रूप से सर्वज्ञदेव के शासन के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं कह सकता, जान नहीं सकता। अनन्त गुणों के स्वीकार बिना सच्चा आत्मा प्रतीति में नहीं आता। अनन्त गुण-पर्याय से एक रूप आत्मा में भेद रहित निर्विकल्प प्रतीति सम्यग्दर्शन है।

लोक में सर्वज्ञ वीतराग जिनदेव के अतिरिक्त अन्य किसी के मार्ग में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं होता, अर्थात्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मोक्षमार्ग नहीं होता। स्व-पर पदार्थ को उसके अनेक धर्म सहित पहचान कराने वाला सम्यग्ज्ञान है। पदार्थ में अनन्त धर्म हैं, इसलिए वह अनेकान्त स्वरूप है और उसको जानने वाला सम्यग्ज्ञान है, अतः वह भी अनेकांत की मूर्ति है, क्योंकि ज्ञान के साथ अभेद रूप से शांति, श्रद्धा आदि अनन्त धर्म रहते हैं – ऐसी अनेकांतमय मूर्ति सदा प्रकाश रूप रहो। इस प्रकार समयसार के दूसरे कलश में कहा है।

अनन्त गुणपर्याय ही पदार्थ के धर्म हैं। प्रत्येक पदार्थ में अपने-अपने अनन्त धर्म हैं। यह चैतन्य पदार्थ भी अपने अनन्त गुण पर्यायों सहित है, उसमें केवलज्ञान और सिद्ध पद की सामर्थ्य है। जड़ में जड़ के गुण-पर्याय हैं, चेतन में चेतन के गुण-पर्याय हैं। और ऐसे स्व-पर तत्वों को भिन्न-भिन्न जानने की आत्मा के ज्ञान की शक्ति है। वह ज्ञान मोक्ष का कारण है, अतः सेवन करने योग्य है। देखो, शुभ राग अथवा पुण्य को सेवन करने योग्य नहीं कहा, किन्तु राग से पार वीतराग-विज्ञान सेवन करने योग्य है – ऐसा कहा है।

ज्ञान कहने का अर्थ शास्त्र के शब्द मत समझना, किन्तु आत्मा का ज्ञान स्वभाव है। उसके सन्मुख होकर जो ज्ञान प्रकट हुआ, वह सम्यग्ज्ञान है, वह स्व-पर का जानने वाला है। सम्यग्ज्ञान उसे कहते हैं, जो स्व-पर को उनके धर्मों सहित जाने। अस्तित्व आदि सामान्य तथा चेतन आदि विशेष गुणों सहित आत्म वस्तु है, परमाणु वर्णादि सहित हैं, प्रत्येक पदार्थ और उसके धर्म अपने से हैं, अन्य से नहीं। एक वस्तु के धर्म दूसरी वस्तु में जाते नहीं अथवा दूसरी वस्तु के कारण वस्तु में धर्म नहीं होते। अहो ! अनेकांतमय वस्तु स्वभाव को ज्ञान, सूर्य की भांति प्रकाशित करता है, अतः सम्यक्दर्शनपूर्वक ऐसे सम्यग्ज्ञान को दृढ़ करना चाहिए। स्वसन्मुख अभ्यास से भेदज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को भाते-भाते केवलज्ञान होने तक सम्यग्ज्ञान का सेवन करो।

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठिते।।

ज्ञान पर से हटकर ज्ञान में ही ठहर जाय, तब तक अच्छिन्न धारा से इस भेदज्ञान को भाना – इस प्रकार सम्यग्ज्ञान की आराधना का उपदेश है।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में अन्तर

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जानि, दुहू में भेद अबाधौ।।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत् होते हू, प्रकाश दीपक तैं होई।। २।।

सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होती है, एक साथ ही दोनों प्रकट होते हैं। उनमें समय भेद नहीं है, तथापि उन दोनों की भिन्न-भिन्न आराधना कही गई है, क्योंकि लक्षण भेद से दोनों में भेद है – इसमें कोई बाधा नहीं है। सम्यग्दर्शन का लक्षण तो शुद्धात्मा की श्रद्धा है और सम्यग्ज्ञान का लक्षण स्व-पर को प्रकाशित करने वाला ज्ञान है। वहां सम्यक् श्रद्धा तो कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है। दोनों साथ होने पर भी दीपक और प्रकाश की भांति उनमें कारण-कार्यपना कहा गया है। सम्यक् श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान की आराधना एक साथ ही प्रारम्भ होती है, किन्तु पूर्णता एक साथ नहीं होती। क्षायिक सम्यक्त्व होने पर श्रद्धा की आराधना तो पूर्ण हो गई, किन्तु ज्ञान की आराधना तो केवलज्ञान होने पर ही पूर्ण होती है, अतः ज्ञान की आराधना भिन्न बतलाई है। सम्यग्दर्शन की भाँति सम्यग्ज्ञान की भी बहुत महिमा है, वह यहाँ बतायेंगे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दर्शन पूर्वक सम्यग्ज्ञान को दृढ़ करना चाहिए। सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यग्ज्ञान तो हो गया, फिर भी पर से भिन्न आत्मा की भावना से उस ज्ञान की वृद्धि करना चाहिए। जैसे सूर्य स्वयं को तथा पर को प्रकाशित करता है, वैसे ही सम्यग्ज्ञानरूपी चैतन्य सूर्य अपने आत्मस्वरूप को तथा पर को प्रकाशित करता है – ऐसा उसका स्वभाव है। राग में स्व को और पर को जानने की शक्ति नहीं है। 'मैं राग हूँ' इसप्रकार राग स्वयं को जानता नहीं है, किन्तु राग से भिन्न ज्ञान ही ऐसा जानता है कि 'यह राग है और मैं ज्ञान हूँ' इसप्रकार राग और ज्ञान का स्वभाव भिन्न है। वास्तव में तो राग में चेतनपना ही नहीं है, ज्ञान की अचिन्त्य सामर्थ्य के समक्ष राग तो कुछ है ही नहीं। निज भाव में अभेद होकर और परभाव से भिन्न रहकर ज्ञान स्व-पर को, स्वभाव-विभाव को जैसा है, वैसा जानता है। राग भी ज्ञान से पर तत्त्व है, राग कहीं स्व तत्त्व नहीं है – ऐसे भेदज्ञान करने की शक्ति ज्ञान में ही है। ज्ञान ही वीतराग-विज्ञान है, वही जगत में साररूप, मंगलरूप और मोक्ष का कारण है।

मुमुक्षु जीव को प्रथम तो सच्चे तत्त्वज्ञान से सम्यग्दर्शन प्रकट करना चाहिए। ज्ञान या चारित्र सम्यग्दर्शन बिना सच्चा नहीं होता। मिथ्यात्व सहित जो कुछ जाननपना होता है अथवा शुभाचरण होता है, वह सब मिथ्या ही है, उससे जीव को अंश मात्र भी सुख नहीं मिलता। मोक्ष की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन है, हे भव्य जीव! उसे तुम शीघ्र धारण करो – यह बात तीसरी ढाल में की गई है। अब यहाँ सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान की आराधना का उपदेश देते हैं।

भाई! इस संसार में दुःखों से छूटकर मोक्ष चाहने वालों के लिए यह बात है। जीव संसार के दुःख तो अनादि से भोग ही रहा है। पुण्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और पाप, स्वर्ग और नर्क यह तो अनादि से कर ही रहा है, यह कोई नई बात नहीं है। उससे पार आत्मा का अनुभव कैसे हो, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कैसे हो ? उसकी यह बात है, वही अपूर्व है और वही सुखी होने का उपाय है। संसार की चारगति के भटकाव से तुझे थकान लगी हो और उससे छूटकर मोक्ष सुख चाहता हो तो यह उपाय कर।

अहो ! सम्यग्दर्शन अपूर्व चीज है, वही सर्व कल्याण का मूल है, उसके बिना किंचित् भी कल्याण नहीं हो सकता। एक क्षण भी निर्विकल्प चिन्दानन्द आत्मा का अनुभव करे तो अपूर्व कल्याण हो। उसकी प्राप्ति अपने से होती है, दूसरे से नहीं। देव-शास्त्र-गुरु ऐसा कहते हैं कि हे जीव ! तेरे लिए हम पर द्रव्य हैं, हमारी सन्मुखता से तुझे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होगी, वह तो तुझे स्वरूप के लक्ष्य से ही होगी, अतः राग और पराश्रय की बुद्धि छोड़ ! परलक्ष्य छोड़कर पुण्य-पाप से भी पार अपने शुद्ध ज्ञानानन्द स्वरूप आत्मा की रूचि कर। बाह्य पदार्थ तो दूर रहे, अपने में रहने वाले गुणों के भेद का विकल्प भी जिसमें नहीं – ऐसा सम्यग्दर्शन है, वह अपूर्व वस्तु है। उसके बिना जीव ने पहले बहुत प्रयास किये, परन्तु अपने स्वरूप का सच्चा श्रवण, रुचि, आदर और अनुभव कभी नहीं किया, इसलिए अब सम्यक्तया जागकर तू आत्मा की पहिचान कर – ऐसा सन्तों का उपदेश है।

अपना परमात्म स्वरूप अनन्त शान्त रस से परिपूर्ण है, उसमें गुण-गुणी के भेद को भी छोड़कर अन्तर्मुख सम्यग्दर्शन का आराधन करना – यह बात तीसरी ढाल में कही, अब उस सम्यग्दर्शन पूर्वक ज्ञान की आराधना की बात चलती है। सम्यग्दर्शन या सम्यग्ज्ञान में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुणभेद का विकल्प काम नहीं करता, ये दोनों ही विकल्पों से भिन्न हैं। अन्तर में राग से भिन्न पड़कर चैतन्यस्वभाव की अनुभूति पूर्वक सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है। धर्म के प्रारंभ में ही ऐसा सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान होता है और अनन्तानुबंधी के अभाव से प्रकट हुआ सम्यक्चारित्र का अंश भी होता है, जिसे स्वरूपाचरण कहते हैं। चौथे गुणस्थान से जीव को ऐसे धर्म का प्रारंभ हो जाता है और वह मोक्ष के मार्ग में चलने लगता है।

प्रथम सम्यग्दर्शन और बाद में सम्यग्ज्ञान – ऐसा समय भेद नहीं है, दोनों साथ ही हैं। जहाँ आत्मा की सम्यक् श्रद्धारूप दीपक जला, वहाँ साथ ही सम्यग्ज्ञान का प्रकाश भी प्रकट होता है। सम्यक्दर्शन के साथ मुनिदशा होवे ही – ऐसा नियम नहीं है। मुनिदशा तो हो अथवा न भी हो, परन्तु सम्यग्ज्ञान तो साथ में होगा ही – ऐसा नियम है। श्रद्धा सम्यक् हो और ज्ञान मिथ्या रहे – ऐसा नहीं बनता। सम्यग्दृष्टि को ज्ञान भले कम हो, परन्तु होता वह सम्यक् ही है। इसप्रकार दर्शन और ज्ञान दोनों साथ होने पर भी दोनों में लक्षण भेद होने से अन्तर भी है – ऐसा जानकर ज्ञान की पृथक् आराधना की गई है। सम्यग्ज्ञान का प्रारंभ तो सम्यग्दर्शन के साथ ही होता है, फिर भी वह सम्यग्दर्शन के साथ ही पूर्ण नहीं हो जाता, अतः उसकी आराधना अलग से करना चाहिए।

दोनों साथ होने पर भी उनमें सम्यग्दर्शन कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है – इस प्रकार उनमें कारण-कार्य का व्यवहार करने में आया है। निजानन्द स्वरूप का अनुभव और प्रतीति होने पर ज्ञान भी सम्यक् हो गया। देखो, सम्यग्दर्शन का कार्य सम्यग्ज्ञान कहा, वैसे तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनों आत्मा के कार्य हैं,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परन्तु उनमें सम्यग्दर्शन की प्रधानता बताने के लिए उसको कारण कहा। अतः पहले कारण और पीछे कार्य – ऐसा नहीं है, दोनों साथ ही हैं।

आत्मा स्वयं क्या चीज है, उसको तो जाने नहीं और उसके बिना भक्ति, व्रत, दान, पूजा आदि करे तो पुण्य बाँधकर स्वर्ग में जायेगा और बाद में चतुर्गति में भी भटकेगा। सम्यग्दर्शन के बिना आत्मा का लाभ नहीं हुआ और भव का अन्त नहीं आया। यह तो जिससे भव का अन्त आवे और मोक्ष का सुख मिले – ऐसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की बात है। आत्मदर्शन और आत्मज्ञान बिना तीनकाल, तीनलोक में कहीं सुख नहीं है। भले पुण्य करके स्वर्ग जाय, परन्तु वहाँ भी लेश मात्र सुख नहीं है। जीव ने पुण्य-पाप किया वह तो अनादि की चाल है, वह कहीं नया नहीं है। आत्मा के ज्ञान से मिथ्यात्व का अभाव हो वह अपूर्व मोक्षमार्ग की चाल है। देखो, सम्यग्ज्ञान को सम्यग्दर्शन का कार्य कहा, किन्तु उसे शुभ राग का कार्य नहीं कहा। राग करते-करते सम्यग्ज्ञान हो जायेगा ऐसा नहीं कहा, क्योंकि सम्यग्ज्ञान कहीं राग का कार्य नहीं है।

सम्यग्दर्शन का लक्षण "श्रद्धा" सम्यग्ज्ञान का लक्षण "जानना" सम्यग्दर्शन तो है कारण और सम्यग्ज्ञान है कार्य।

इस भाँति दो प्रकार से लक्षण के द्वारा भिन्नता बताई, इसमें कहीं बाधा नहीं है। जैसे दीपक और प्रकाश दोनों एकसाथ होते हैं, तथापि दीपक के कारण उजेला हुआ – ऐसा कहा जाता है, वैसे ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एकसाथ होने पर भी उनमें कारण-कार्यपना कहा। श्रद्धा को मुख्य बताने के लिए उसे कारण कहा और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान को कार्य कहा। यह कारण-कार्य दोनों शुद्ध हैं, उन दोनों के बीच में कहीं राग नहीं आया। राग या देहादि की क्रिया में तो सम्यग्ज्ञान के कारण का उपचार भी नहीं आता।

पूर्वपर्याय कारण और उत्तरपर्याय कार्य – ऐसा भी कहा जाता है, जैसे मोक्षमार्ग कारण और मोक्ष कार्य है।

अनेक वर्तमान पर्यायों में एक कारण और दूसरी कार्य – ऐसा भी कहा जाता है, जैसे सम्यग्ज्ञान कारण और सुख कार्य।

द्रव्य कारण और पर्याय कार्य – ऐसा भी कहा जाता है, जैसे सम्यग्दर्शन का कारण शुद्ध भूतार्थ आत्मा।

इस तरह अनेक प्रकार की विवक्षा से कारण-कार्य के भेद पड़ते हैं, उन्हे जैसे हैं, वैसे जानना चाहिए। कारण-कार्य को एकान्त अभेद मानना या एकान्त भिन्न आगे-पीछे मानना सच्चा नहीं है। अज्ञानी जीव सच्चे कारण-कार्य को जानता नहीं है और अन्य विपरीत कारणों को मानता है, अथवा एक के कारण-कार्य को दूसरे में मिलाकर मानता है, अतः उसके ज्ञान में कारण-कार्य का विपर्यास है अर्थात् मिथ्याज्ञान में कारण विपरीतता, स्वरूप विपरीतता, भेदाभेद विपरीतता कही है।

आत्मा है ऐसा माने, किन्तु उसकी पर्याय का कारण परद्रव्य है – ऐसा माने, अथवा आत्मा दूसरे के कार्य का कारण है, ऐसा माने अथवा आत्मा की मोक्षदशा का कारण राग है – ऐसा माने, तो उसको कारण विपरीतता है, सच्चा ज्ञान नहीं है।

आत्मा है – ऐसा तो कहे, किन्तु उसे ईश्वर ने बनाया है – ऐसा माने, अथवा पृथ्वी आदि पंचभूत के संयोग से आत्मा बना है – ऐसा माने, अथवा सर्वव्यापक ब्रह्मा माने, आत्मा का पर से भिन्न स्वतंत्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अस्तित्व न माने, तो उसको स्वरूप विपरीतता है अर्थात् सच्चा ज्ञान नहीं है।

गुण और गुणी को सर्वथा भेद माने या सर्वथा अभेद माने तो उसको भेदाभेद विपरीतता है, अथवा दूसरे ब्रह्मा के साथ इस आत्मा को अभेद मानना या ज्ञान को आत्मा से भिन्न मानना, यह भी विपरीतता है – वस्तु का सच्चा ज्ञान नहीं है।

इसप्रकार अज्ञानी जो कुछ जानता है, उसमें उसको किसी न किसी प्रकार की विपरीतता होने से उसका सभी जानपना मिथ्याज्ञान ही है, मोक्ष साधने के लिए कार्यकारी नहीं हैं।

ज्ञान में मिथ्या श्रद्धा के कारण ही मिथ्यापना है या ज्ञान में स्वयं कोई दोष है ? ऐसे प्रश्न के उत्तर में पं. टोडरमलजी कहते हैं कि अज्ञानी के ज्ञान में भी भूल है, क्योंकि ज्ञान में जानपना होने पर भी वह ज्ञान अपने स्व प्रयोजन को साधता नहीं, स्व ज्ञेय को जानने की तरफ बढ़ता नहीं – यह उसका दोष है। अज्ञानी अप्रयोजन भूत पदार्थों के जानने में तो ज्ञान को प्रवर्ताता है, किन्तु जिससे अपना प्रयोजन सिद्ध हो – ऐसे आत्मा का ज्ञान तथा स्व–पर का भेदज्ञान तो वह करता नहीं, इसलिए उसके ज्ञान में भी भूल है। मोक्ष के हेतुभूत स्व तत्त्व को जाननेरूप प्रयोजन को साधता न होने से वह ज्ञान मिथ्या है। भगवान के मार्गानुसार जीवादि तत्त्वों का स्वरूप बराबर पहिचानने पर अज्ञान टलता है और सच्चा ज्ञान होता है और सच्चा ज्ञान तो परम अमृत है, वह अमृत समान मोक्षसुख का साधन है, इसलिए हे भव्य जीव ! तुम इस सम्यग्ज्ञान का सेवन करो।

सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान अपने आत्मा को पर से भिन्न चिदानन्द स्वरूप जैसा है, वैसा स्वसंवेदन पूर्वक अतीन्द्रिय ज्ञान से जानता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दर्शन के साथ वाले सम्यग्ज्ञान में आंशिक अतीन्द्रियपना हुआ है – ऐसा सम्यग्ज्ञान मोक्षमार्ग का द्वितीय रत्न है। शुद्धात्म सन्मुख उपयोग बढ़ने पर यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनों रत्न एक साथ प्रकट होते हैं और उसी समय अनन्तानुबंधी कषायों के अभाव से स्वरूपाचरण भी होता है, ऐसा मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन होने पर चौथे गुणस्थान में प्रारम्भ होता है। जैसे सिद्धप्रभु के आनन्द का नमूना चखते हुए सम्यग्दर्शन प्रकट हुआ, वहाँ एक साथ अनन्त गुणों में निर्मल कार्य होने लगता है।

श्रद्धा-गुण की शुद्ध पर्याय सम्यग्दर्शन कहीं त्रिकाली गुण नहीं है। श्रद्धा गुण त्रिकाल है, उसकी सम्यक् पर्याय सम्यग्दर्शन है और उससे मिथ्यात्व संबंधी दोष का अभाव होने से उस सम्यग्दर्शन को शास्त्र में गुण भी कहा जाता है। मिथ्यात्व वह मलिनता और दोष है, उसके समक्ष सम्यग्दर्शन वह पवित्र गुण है, उसमें शुद्धता-निर्मलता है, इसलिए उसको गुण कहा है। उसमें अभेद आत्मा की निर्विकल्प प्रतीति है, वह मोक्षपुरी में प्रवेश होने का द्वार है।

सम्यग्ज्ञान वह ज्ञान गुण की पर्याय है। चौथे गुणस्थान में आत्मा का अनुभव – ज्ञान होने पर सम्यग्ज्ञान प्रारंभ हुआ, किन्तु वह एक साथ पूर्ण नहीं होता, केवलज्ञान होने पर पूर्ण होता है। सम्यक् ज्ञान स्व-पर को, भेद-अभेद को, शुद्ध-अशुद्ध को, जैसा है वैसा जानकर अपने आत्मा को पर भावों से भिन्न साधता है।

मैं शुद्ध परिपूर्ण अभेद एक भूतार्थ आनन्दमय चैतन्यतत्त्व हूँ – ऐसे स्वसंवेदन पूर्वक सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा की मान्यता करता है। सम्यग्दर्शन में अपने ऐसे आत्मा का स्वीकार है। सम्यग्दर्शन पर्याय में स्वसन्मुखता है, परसन्मुखता नहीं है। क्या पर समक्ष देखने से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दर्शन होता है ? नहीं, किसी पर की सन्मुखता से (देव-गुरु की सन्मुखता से भी) सम्यग्दर्शन नहीं होता। अपने भूतार्थ आत्मा की सन्मुखता से ही सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन पर्याय श्रद्धा गुण की है और श्रद्धा गुण आत्मा का है, ऐसी स्थिति में आत्मा के सन्मुख हुए बिना सम्यग्दर्शन पर्याय कहाँ से होगी ? श्रद्धा गुण और उसकी सम्यग्दर्शन पर्याय वह तो आत्मा का निज स्वरूप है, उस निज स्वरूप के सन्मुख होने पर वह स्वयं श्रद्धा गुण की निर्मल पर्यायरूप से परिणमित होता है। इस जीव का श्रद्धा गुण कहीं दूसरे किसी देव-शास्त्र गुरु के पास नहीं है कि जिनमें से सम्यग्दर्शन पर्याय आवे। श्रद्धा जहाँ होगी, वहीं से उसकी सम्यग्दर्शन पर्याय आवेगी। श्रद्धा गुण आत्म वस्तु का है, उसकी अखण्ड प्रतीति से सम्यक्त्वरूप शुद्ध पर्याय प्रकट होगी। सम्यक्त्व की तरह सभी गुणों की शुद्ध पर्यायें भी स्वाश्रय से ही प्रकट होती हैं – ऐसा समझना चाहिए।

क्या आत्मा का कोई गुण राग में है ? नहीं, तो राग की सन्मुखता से कोई गुण प्रकट नहीं होता।

क्या आत्मा का कोई गुण निमित्त में है ? नहीं, तो निमित्त की सन्मुखता से कोई गुण प्रकट नहीं होता।

इस आत्मा का कोई गुण देव-शास्त्र-गुरु के पास है ? नहीं, तो उनकी सन्मुखता से कोई गुण प्रकट नहीं होता।

भगवान आत्मा के सर्व गुण अपने में ही हैं, अन्य किसी में नहीं, इसलिए आत्मा के अपने सामने देखने से ही सर्वगुण प्रकट होते हैं, पर समक्ष देखने से कोई गुण प्रकट नहीं होता। त्रिकाली गुण स्वभाव अपने में है, उसके सन्मुख होने पर ही सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यक्ज्ञान हुआ, आनन्द भी हुआ और अनन्त गुण की निर्मलता के वेदन सहित

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मोक्षमार्ग खुल गया, अपना आनन्दमय स्व-घर जीव ने देख लिया।

हे भाई ! यह तेरे निज घर की बात है। अपने निज घर की बात तू उत्साह से सुन। अनादि से राग़ादि पर घर को ही अपना माना था, यहाँ सर्वज्ञ परमात्मा और संत तुझे तेरा स्व-घर बताते हैं, जिसको देखते ही आनन्द सहित सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है तथा अन्तर में मोक्ष का दरवाजा खुल जाता है। सम्यग्दर्शन तो धर्म की मूल इकाई है, उसको भूलकर जीव जो कुछ करे उससे जन्म-मरण का अन्त नहीं आता। इसलिए जो अनन्त काल में पहले कभी नहीं किया और जिसके प्रकट होते ही जन्म-मरण का अन्त आकर मोक्ष की ओर का परिणमन प्रारंभ हो जाता है – ऐसा सम्यग्दर्शन आराधने योग्य है।

समवशरण के बीच में गणधरों तथा शत इन्द्रों की उपस्थिति में सर्वज्ञ वीतरागी भगवान की दिव्य वाणी खिरती थी और गणधर भगवान उसे झेलते थे। उसे झेलकर गणधरों और तदनुसार कुन्दकुन्दाचार्य आदि वीतरागी सन्तों ने जो समयसारादि परमागम रचे, उनकी ही परम्परा जैनमार्ग में चल रही है और उसके अनुसार ही पं. दौलतरामजी ने इस छहढाला की रचना की है। उसमें कहते हैं कि हे जीव ! तेरे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनन्द की खान जड़ में नहीं है, राग में नहीं है, विकल्प में नहीं है, तेरे आत्मा का श्रद्धा गुण ही तेरे सम्यग्दर्शन की खान है, तेरा ज्ञान गुण ही तेरे ज्ञान की खान है, तेरा आनन्द गुण ही महा आनन्द की खान है, अनन्त गुण की खान तेरे आत्मा में ही है, ऐसे आत्मा के सन्मुख होने पर आत्मा के श्रद्धा आदि अनंत गुणों का सम्यक् परिणमन हुआ वही सम्यग्दर्शन ज्ञान आदि है। जहाँ जिस वस्तु की खान भरी हो वह वस्तु उसमें से ही निकलेगी,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कुएं में पानी हो तो बाहर आवे, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन की खान कहाँ है ? सम्यग्दर्शन की खान आत्मा है, अनन्त गुण की खान आत्मा है। सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति के लिए अपने आत्मा के अतिरिक्त अन्यत्र जाना नहीं पड़ता। सम्यग्दर्शन की ध्रुव खान ऐसे आत्म स्वभाव का स्वीकार करते ही सम्यग्दर्शन होता है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। सम्यग्ज्ञान आदि की भी यही रीति है। शुद्धात्मा की सन्मुखता में बीच में अन्य किसी का या रागादि का आलम्बन है ही नहीं, सारा मोक्षमार्ग आत्मा के अवलम्बन से है।

ज्ञान स्वरूप आत्मा में केवल ज्ञान भरा है, राग के मेल-मिलाप बिना अकेला शुद्ध ज्ञान आत्मा का स्वरूप है। ऐसे आत्मा को जानने पर आनन्द रस से भरपूर सम्यग्ज्ञान प्रकट होता है। सम्यग्दर्शन के साथ ऐसा सम्यग्ज्ञान सदा होता है। भगवान आत्मा के श्रद्धा गुण की सम्यग्दर्शन पर्याय ज्ञान, आनन्द और शान्ति के अपूर्व वेदन सहित प्रकट होती है। जीवादि सात तत्त्व और उनमें पर से भिन्न अपना शुद्ध आत्मा, उसको सम्यग्दृष्टि जानता है और उसकी श्रद्धा करता है। सामान्य और विशेष दोनों की विपरीतता रहित प्रतीति सम्यग्दर्शन है। अकेले सामान्य को माने, विशेष को न माने अथवा अकेला विशेष माने, सामान्य को न माने तो तत्त्व श्रद्धा सच्ची नहीं होती। वस्तु स्वयं सामान्य-विशेष स्वरूप है, उसको विपरीतता रहित जैसी है वैसी जानकर श्रद्धा करनी चाहिए। धर्मी को श्रद्धा ज्ञान में विपरीतता नहीं तथा संशयादि दोष भी नहीं। हमारे आत्मा को हमने जाना या नहीं, हमें सम्यग्दर्शन हुआ या नहीं, हमें अनुभव हुआ वह सच्चा होगा या नहीं – ऐसा संशय धर्मात्मा को नहीं होता। जहाँ ऐसा संशय हो वहाँ तो अज्ञान है। धर्मी तो अपनी दशा को निशंक जानता है कि अपूर्व

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्द के वेदन सहित हमको सम्यग्दर्शन हुआ है, आत्मा की अनुभूति हुई है, सर्वज्ञ देव ने जैसा आत्मा जाना है, वैसा ही अपने आत्मा को हमने अनुभव सहित जाना है, उसमें अब कोई शंका नहीं है। ऐसी श्रद्धा-ज्ञान से मोक्षमार्ग की आराधना होती है। आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान बिना कोई जीव भले द्रव्यलिंगी साधु हो, परन्तु उसको संशयादि दोष बने रहते हैं। जहाँ सम्यग्ज्ञान है, वहाँ आत्मा का संशय नहीं रहता और जहाँ आत्मा का संशय है, वहां सम्यग्ज्ञान नहीं है। जहाँ शंका तहाँ गिन सन्ताप, ज्ञान तहाँ शंका नहीं स्थाप.....।[1] ज्ञानी जीव आत्मस्वरूप में निःशंकित होते हैं, इसीलिए मरणादि के भय रहित निर्भय होते हैं।

सम्यग्दर्शन होने में आत्मा कारण है। जिस सम्यग्दर्शन में परिपूर्ण आत्मा ही प्रतीति में आ गया तो उसके साथ के ज्ञान में संशय कैसे रह सकता है ? मेरा चैतन्यस्वरूप आत्मा मोह और राग से रहित है अर्थात् भव के कारण से रहित है। ऐसे आत्मा का जिस श्रद्धा ने अनुभव सहित स्वीकार किया, उस श्रद्धा के साथ का ज्ञान भी निःशंक हो गया कि मेरे आत्मा में भव नहीं, भव का कारण मेरे स्वभाव में नहीं। भव के कारण रूप ऐसे विभाव से भिन्न हमारा भव रहित मुक्त स्वभाव हमने अनुभव किया, अब भव कैसा ? अब अनन्त भव शेष होंगे – ऐसी शंका धर्मी को होती ही नहीं, उसके तो अल्पकाल में मोक्ष होने की पात्रता आत्मा में से आ गई है, मोक्ष की तरफ का परिणाम चल ही रहा है। ऐसी दशा का नाम सम्यग्ज्ञान है और वह मोक्ष का साधन है।

सम्यग्ज्ञान सूर्य की किरणों में राग नहीं है, उसमें स्व-पर का यथार्थ निर्णय होता है। ज्ञान और आनन्द स्व,

1. श्रीमद राजचन्द

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शरीर और रागादि पर।

मैं ज्ञानमय तत्त्व हूँ। ज्ञान के साथ उस भूमिका के योग्य राग है, कर्म है, शरीर है, बस। इतना स्वीकार है, परन्तु ज्ञान से तो वह भिन्न ही है। तथा ज्ञान के साथ अनन्त भव हों ऐसा राग नहीं है, अनन्त भव हों ऐसा कर्म नहीं है, अल्प राग और अल्प कर्म है, वह भी मैं नहीं हूँ – उसका अस्तित्व मेरे ज्ञान में नहीं है, मेरा अस्तित्व राग और कर्म रहित शुद्ध चैतन्यमय है। इस प्रकार धर्मी जीव स्व-पर के भिन्न अस्तित्व को जानता है।

सम्यग्दर्शन में आत्मा के भूतार्थ स्वभाव की प्रतीति है, उसके साथ का सम्यग्ज्ञान स्व-पर, द्रव्य-पर्याय, शुद्धता-विकार सबको भेद सहित जानता है। वस्तु का सच्चा स्वरूप जाने बिना श्रद्धा किसकी ? ज्ञान बिना श्रद्धा सच्ची नहीं और श्रद्धा बिना ज्ञान सच्चा नहीं। सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन दोनों साथ ही हैं।

मैं अखण्ड शुद्ध चैतन्य हूँ। मेरी पर्याय में अमुक निर्मलता हुई है और अल्प मलिनता है, तथा कर्म का सम्बन्ध भी अल्प है। कितना ? कि एकाध भव हो ऐसा, परन्तु जिससे अनन्त भव हों ऐसा कोई भी मिथ्यात्वादि मलिन भाव या कर्म का सम्बन्ध मेरी पर्याय में नहीं है। अस्थिरता का जो अत्यन्त अल्प रागादि है, उसकी स्वभाव दृष्टि में कोई गिनती नहीं है। स्वभाव में या उसमें एकाग्र हुई पर्याय में तो भव है नहीं, विकार भी नहीं, पराश्रय में जो अल्प रागादि अथवा एकाध भव हों वह भी ज्ञान से तो भिन्न है। ज्ञान स्व है और जो अल्प रागादि हैं, वे ज्ञान से भिन्न पर हैं। अनन्त संसार का कारण हो ऐसा तो कोई रागादि भाव धर्मी के होता ही नहीं। ज्ञान से भिन्न पड़े रागादि में ऐसी शक्ति नहीं कि जीव को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बहुत भव करावें। इसका नाम अनन्तानुबन्धी का अभाव है। धर्मी को महान चैतन्य तत्त्व के समयग्ज्ञान के सामने रागादि तो अत्यन्त हीन हो गये हैं। ऐसा होने पर जो अल्प राग है, उसे भी धर्मी जीव बन्ध का ही कारण समझता है, मोक्ष का कारण कदापि नहीं। अब, सम्यग्ज्ञान के साथ बन्ध का कारण तो इतना अल्प रहा है कि कदाचित् एकाध भव होगा। भविष्य में प्रबल कर्म आ जावे और भव में भटकावे तो ? धर्मी को ऐसा सन्देह भी नहीं होता, कयोंकि ज्ञान में से तो ज्ञान ही आवे, ज्ञान में से कहीं संसार नहीं आवे। मैं तो ज्ञान हूं, ज्ञान में संसार है ही कहाँ ? ज्ञान के बल से यह अल्प रागादि भी एकाध भव में छूट जावेंगे और मोक्ष दशा प्रकट हो जावेगी। जिसको इसमें सन्देह है उसको अपने सम्यग्ज्ञान की ही श्रद्धा नहीं अर्थात् उसे सम्यग्ज्ञान हुआ ही नहीं।

अहा! समयग्ज्ञान किसे कहें ? उसकी अचिन्त्य महिमा की लोगों को खबर नहीं है। जैसे सम्यक् श्रद्धा में शुद्धात्मा के अतिरिक्त अन्य का स्वीकार नहीं, वैसे ही उसके साथ जो सम्यज्ञान है वह भी ऐसी शक्ति वाला है कि अपने स्वभाव में से परभाव को भिन्न कर डालता है, अर्थात् सम्यग्ज्ञान के साथ ऐसा राग नहीं रहता जो अनन्त भव करावे, वैसे ही अजीव में भी निमित्तरूप से ऐसा कोई कर्म का संबंध वहाँ नहीं रहता जो अनन्त भव का कारण हो सके – इस प्रकार सब तत्त्वों का मेल होता है। यहाँ उपादान में तो अनन्त भव नहीं और निमित्त में भी ऐसा कर्म या विकार नहीं। जो अल्प कर्म अथवा विकार है, उसका भी सम्यग्ज्ञान में तो अभाव ही है। विकार के किसी अंश को ज्ञान अपने साथ एकपने नहीं स्वीकारता, सम्यग्ज्ञान की धारा तो राग से अत्यन्त जुदी जाति की वर्तती है। आत्मा में ऐसी अपूर्व ज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दशा होने पर वह स्पष्ट अपने वेदन में आती है।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के साथ भव के अभावरूप भाव प्रगट हुआ, मोक्ष की तरफ की धारा प्रकटी है, फिर वहाँ अब अनन्त भव की शंका कैसे रहे ? वहाँ अब जो राग रहा वह इतना अल्प है कि अल्प काल में ही उसका अभाव हो जावेगा। उस राग को ज्ञान से तो भिन्न जाना ही है तो फिर उसका बल कहाँ से रहेगा ? ज्ञान का ही बल है और उस ज्ञान सामर्थ्य के बल से राग का नाश ही हो जाता है। ज्ञान तो विकार रहित ही है, वह ज्ञान विकार का नाशक है, रक्षक नहीं। अरे ऐसा ज्ञान जागृत होने पर अन्दर में जो शान्ति वेदन में आती है उसकी क्या बात ? आत्मा की श्रद्धा और ज्ञान कोई सामान्य वस्तु नहीं है, वह तो कोई अलौकिक भाव है, वह एक क्षण में अनन्त संसार दुःखों को काटकर अपूर्व मोक्षसुख का स्वाद चखाती है। संसार चक्र को बंद करके मोक्ष चक्र चालू करती है। इसलिए हे भव्य जीव ! तुम सम्यग्दर्शन सहित सम्यग्ज्ञान की आराधना करो।

सच्चा ज्ञान होने पर आत्मा में संदेह नहीं रहता। यह जीव लोक में भी जिस वस्तु को जानता है उसको सन्देह रहित जानता है, तो आत्मा को जानने में सन्देह कैसे चले ? सोना, हीरा वगैरह को निःसंदेह परीक्षा करके ही खरीदता है। "चाहे जो भी होगा" – ऐसा सन्देह रखकर ऐसे-ऐसे ही नहीं ले लेता। फिर यह तो चैतन्य हीरा है, अपूर्व मोक्षमार्ग है, उसको सन्देह रहित परीक्षा करके स्वीकार करे तो ही सम्यग्ज्ञान होता है, उसमें सन्देह वाला ज्ञान नहीं चल सकता। इस प्रकार आत्मा की निस्सन्देहता वाले सम्यग्ज्ञान को भिन्न-भिन्न लक्षणों से पहचान कर अपने हित के लिए उसकी आराधना करो।

सच्चा ज्ञान जगत में सार है। सम्यग्ज्ञान के बिना राग की मंदता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

से पुण्य बंधता है, उससे स्वर्ग मिलता है, किन्तु जन्म–मरण का अन्त नहीं आता। जन्म-मरण का अन्त तो सम्यग्ज्ञान से ही आता है।

पर दव्यन तें भिन्न आप में रूचि सम्यक्त्व भला है,
आप रूप को जानपनो सो सम्यग्ज्ञान कला है।

परद्रव्यों से भिन्न, जिसमें अनन्त ज्ञान आनन्द निश्चय से भरा है – ऐसे आत्मा को पहचान कर अनुभव पूर्वक जो रुचि और ज्ञान हुआ, वह सम्यग्दर्शन और समयग्ज्ञान है और मोक्ष के साधने की कला है। भाई संसार की अन्य अनेक कलायें तूने पढ़ी किन्तु मोक्ष के लिए यह वीतरागी कला तूने कभी न जानी। अनन्तकाल में प्रगट नहीं की ऐसी यह ज्ञान कला अपूर्व चीज है, वह जन्म-मरण के दुःखों को मिटाने वाला परम अमृत है, वही परम सुख का कारण है। सम्यग्दर्शन के बाद भी अच्छिन्न धारा से भेद-ज्ञान की भावना करना उचित है, अतः केवलज्ञान होने तक उसी के करने का उपदेश है।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनों निर्मल पर्यायें हैं। एक पर्याय श्रद्धा गुण की है और दूसरी ज्ञान गुण की है। उन दोनों पर्यायों में व्यवहार से कारण-कार्यपना है। यद्यपि ज्ञान पर्याय गुण के आधार से है, किन्तु सहचर अपेक्षा से श्रद्धा पर्याय को उसका कारण कहा, रागादि अशुद्धता को कारण नहीं कहा। इसीप्रकार अतीन्द्रिय ज्ञान को अतीन्द्रिय सुख का साधन कहना इत्यादि कथन भी व्यवहार है। सम्यग्दर्शन, समयग्ज्ञान, आनन्द आदि सभी पर्यायों का मूल उपादान तो आत्मद्रव्य है, उसके अनन्त गुणों की पर्यायें एक साथ परिणमती हैं, उनमें से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का स्वरूप बताने के लिए यह वर्णन है। वह सम्यग्दर्शन और ज्ञान पर्याय पर में से या राग में से नहीं आती, परवस्तु या राग उसका कारण नहीं। अपनी निर्मल पर्यायों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में परस्पर कारण-कार्यपना व्यवहार से कहा, निश्चय से उन उन पर्यायों रूप से परिणमित आत्मा ही अभेदपने उनका कारण है, कारण-कार्य भिन्न नहीं है, उनमें समय भेद नहीं है। भगवान आत्मा में श्रद्धा-ज्ञानादि निज गुणों की अनन्त शक्ति भरी है, वही अपने-अपने निर्मल भाव रूप से परिणमती है, उसमें बाहर का कोई कारण नहीं। आत्मा के अनन्त गुणों में परस्पर कारण-कार्यपना कहा जाता है। जैसे– यहाँ सम्यग्दर्शन को सम्यग्ज्ञान का कारण कहा। प्रवचनसार में अतीन्द्रिय ज्ञान को अतीन्द्रिय सुख का कारण कहा, समयसार में अज्ञानी निश्चय चारित्र के कारणरूप ज्ञान-श्रद्धान से शून्य है – ऐसा कहकर सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान को चारित्र का कारण कहा – इस प्रकार आत्मा की अपनी पर्यायों में अनेक प्रकार से कारण-कार्यपना कहा जाता है, परन्तु रागादि अशुद्धता के साथ अथवा शरीर की क्रिया के साथ सम्यग्दर्शन आदि का कारण-कार्यपना नहीं है। देखो, वहाँ समयसार में सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान को निश्चय चारित्र का कारण कहा है। पंचमहाव्रत-समिति आदि व्यवहार-चारित्र करने पर भी सम्यग्दर्शन बिना मिथ्यादृष्टि जीव को चारित्रहीन कहा है, क्योंकि चारित्र के मूल कारणरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान का ही उसके अभाव है। सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक ही सम्यक्चारित्र होता है, इसलिए उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान को चारित्र का मूल कारण कहा। उसीप्रकार सम्यग्ज्ञान का कारण सम्यग्दर्शन कहा। सम्यग्दर्शन बिना चाहे जितना शास्त्र ज्ञान हो तो भी वह सम्यग्ज्ञान नहीं कहा जाता। जिस ज्ञान में अपना आत्मा न आया, उसको सम्यक् कौन कहे ? जो ज्ञान स्वयं अपने को ही न जाने उसे ज्ञान कौन कहे ? जो ज्ञान आत्मा को न साधे, जो मोक्ष का साधन न हो वह सम्यग्ज्ञान नहीं, वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो मिथ्याज्ञान है। सम्यग्दर्शन के साथ का ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान है, इसलिए सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान को बराबर पहिचान कर उसकी आराधना करना चाहिए।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान बिना जीव ने संसार में अनन्त भव धारण किए और अनन्त दुःख भोगे। राजा हुआ, भिखारी भी हुआ, स्वर्ग में गया और नर्क में भी गया, किन्तु कहीं सुख नहीं मिला। कोटि जन्मों में तप तपा (शान्ति में नहीं ठहरा, किन्तु तपा) और आत्मज्ञान बिना दुःखी ही रहा। यहाँ तो अब तत्त्व के ज्ञान से आत्मा के स्वरूप का सच्चा निर्णय और अनुभव करके सम्यग्दर्शन हुआ, उसके साथ के सम्यग्ज्ञान की बात है। ऐसा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान गृहस्थ को भी होता है। वह धर्मी जानता है कि हमारी चीज तो अन्तर में ज्ञान और आनन्द से भरी है, इस बाहर की चीज में हम नहीं और हमारे में बाहर की चीज नहीं – ऐसा भेद-ज्ञान वह वीतरागी विज्ञान है, वह मोक्ष का कारण है और तीन लोक में सारभूत है। आत्मा के ज्ञान समान जगत् में अन्य कोई सुख का कारण नहीं। इस ढाल में ही आगे चौथे श्लोक में कहेंगे –

"ज्ञान समान न आन जगत् में सुख को कारन,
इह परमामृत जन्म-जरा-मृत रोग निवारन।"

संसार में पैसा-मकान-मोटर आदि में कहीं सुख है ही नहीं। अरे ! स्वर्ग के वैभव में भी सुख नहीं है तब अन्य की बात क्या ? सुख तो बस, सम्यग्ज्ञान से आत्मा का अनुभव होने में ही है, वही सच्चा सुख है, शेष तो सब कुछ अज्ञानी की कल्पना है।

यहाँ बाहर की पढ़ाई रूप ज्ञान की बात नहीं है, किन्तु अपने आत्मा के अनुभव में से प्रकट हुए अन्तर्ज्ञान की बात है। मैं शुद्ध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्द चैतन्यमूर्ति हूँ – ऐसे देहादि से भिन्न आत्मा का ज्ञान होने पर परम अतीन्द्रिय शान्तिरूप जो सुख अनुभव में आता है, वैसा सुख जगत में कहीं नहीं है। पुण्य को सुख का कारण नहीं कहा, राग को या बाह्य सामग्री को भी सुख का कारण नहीं कहा, शुभराग, पुण्य और बाह्यसामग्री, इन सबसे पार ऐसे चिदानन्द आत्मा का जो सच्चा ज्ञान है वही सुख का कारण है – ऐसा कहा, क्योंकि वह ज्ञान स्वयं आनन्दरूप होकर प्रकट होता है, आत्मा के सुख का स्वाद लेते हुए ज्ञान प्रकट होता है।

हे भाई ! तू बाहर के थोथे जानपने में अपनी बुद्धि को रोकता है, उसके बदले अन्तर में आत्मा का प्रेम लाकर, आत्मा का स्वरूप कैसा अद्भुत है, यह जानने में अपनी बुद्धि को जोड़ तो तेरा परम हित होगा। आत्मा को जानने पर तुझे परमसुख का अनुभव होगा। आत्मा कैसा है ? उसका विचार, अभ्यास और मनन किए बिना यदि जीवन पूरा हो गया तो तू सुख कहाँ से पायेगा ? इसलिए सम्यग्दर्शन सहित सम्यग्ज्ञान की आराधना कर। सम्यग्दर्शन के बाद ही ज्ञान की विशेष आराधना का उपदेश है।

अरे ! सच्चे ज्ञान बिना अज्ञान भाव में तो सुख कहाँ से होगा ? अज्ञान से तो संसार की चार गति में अनन्त दुःख जीव भोग रहा है। उससे छूटने और सुखी होने के लिए यह उपदेश है, क्योंकि चारगति में अनन्तजीव हैं वे सब दुःख से छूटकर सुखी होना चाहते हैं, अतः जिस से दुःख मिटे और सच्चा सुख हो, ऐसे वीतराग-विज्ञान का उपदेश श्रीगुरू ने करुण पूर्वक दिया है। हे भाई ! अपने आत्मा को पहिचानकर ऐसा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान करने से ही तुझे सुख होगा और तेरा दुःख मिटेगा। अतः सम्यग्दर्शन और ज्ञान को पहचान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कर उनकी आराधना करो। सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट होने के बाद चारित्र की आराधना का भी उपदेश करेंगे। तीसरी ढाल में सम्यग्दर्शन का वर्णन करके उसकी महिमा बताई, इस चौथी ढाल में सम्यग्ज्ञान का वर्णन करके उसकी महिमा बताते हैं ? और बाद में छठी ढाल में सम्यक्चारित्र का वर्णन करके उसकी महिमा बतायेंगे। इस प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप वीतराग-विज्ञान वह जीव के सुख का कारण है, उसकी आराधना का यह उपदेश है।

सम्यग्ज्ञान के प्रकारों का वर्णन

सम्यग्दर्शन पूर्वक सम्यग्ज्ञान की आराधना करने को कहा, अब वह सम्यग्ज्ञान कितना है तथा उसमें प्रत्यक्ष-परोक्षपना किस प्रकार है – यह कहते हैं।

तास भेद दो हैं परोक्ष परतछि तिन माँही,
मति श्रुत दोय परोक्ष अक्ष मनतें उपजाहीं।
अवधि ज्ञान मनपर्जय दो हैं देश प्रतच्छा,
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये जाने जिय स्वच्छा।। ३।।
सकल द्रव्य के गुन अनन्त पर्याय अनन्ता,
जानै एकै काल प्रकट केवलि भगवन्ता।। ४।। पूर्वार्ध।।

सम्यग्दर्शन सहित जो सम्यग्ज्ञान होता है उसके दो भेद हैं, एक परोक्ष, दूसरा प्रत्यक्ष।

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दोनों इन्द्रियों तथा मन द्वारा होते हैं, अतः परोक्ष हैं। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान ये दोनों एक देश प्रत्यक्ष हैं। उनके द्वारा जीव मर्यादित द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव को इन्द्रिय और मन के अवलम्बन बिना प्रत्यक्ष – स्पष्ट जानता है। केवलज्ञान सम्पूर्ण प्रत्यक्ष है, केवली भगवन्त समस्त द्रव्योंके अनन्त गुणोंको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तथा अनन्त पर्यायों को एक साथ प्रत्यक्ष जानते हैं। जानने में कोई द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादा नहीं है। अहो ! यह केवलज्ञान की अद्भुत अचिन्त्य महिमा है। इसकी पहिचान करते ही जीव को ज्ञान स्वभाव की प्रतीति सहित अतीन्द्रियसुख के वेदन से भरपूर सम्यग्ज्ञान प्रकट होता है। प्रवचनसार में आचार्य देव ने उसकी बहुत महिमा गाई है। अरे ! केवलज्ञान की महिमा की तो बात क्या, चौथे गुणस्थान का जो समयग्ज्ञान मति-श्रुत रूप है, उसकी भी अपूर्व महिमा है, वह परमानन्दमय अमृत है और मोक्ष का साधक है।

सम्यग्दृष्टि जीव को सम्यग्दर्शन के साथ वर्तते सम्यग्ज्ञान की यह बात है। पर को जानने वाले मति-श्रुत ज्ञान में इन्द्रिय-मन का अवलम्बन है, किन्तु मति-श्रुत ज्ञान जब आत्मा के सन्मुख होकर निर्विकल्प स्वसंवेदन करता है तब उसमें मन या इन्द्रियों का आलम्बन नहीं रहता, उतने अंश में स्वसंवेदन में वह भी प्रत्यक्ष है। तत्त्वार्थसूत्र आदि में जहाँ मति-श्रुतज्ञान को सामान्यपने परोक्ष कहा है उसमें इतना विशेष समझना कि निर्विकल्प अनुभव दशा में तो वे ज्ञान स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हैं, अतीन्द्रिय हैं, मन तथा इन्द्रियों के अवलम्बन रहित हैं। ऐसा अतीन्द्रिय आत्मज्ञान गृहस्थ को भी होता है। हाँ, ज्ञान में सन्मुख होकर निर्विकल्प संवेदन का काल थोड़ा ही होता है इसलिए उसकी बात मुख्य न करके सामान्य वर्णन में मति-श्रुत ज्ञान को परोक्ष कहा गया है।

ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय के भेद के विकल्प रहित होकर जब आत्मा स्वयं अपने स्वरूप का ही अनुभव करता है – जानता है तब उसको प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय ज्ञान है। सम्यग्दर्शन होते ही सम्यग्ज्ञान में ऐसा अतीन्द्रियपना हुआ तब वह सम्यक् हुआ, वह ज्ञान अतीन्द्रिय आनन्द

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के वेदन सहित है। इसके अतिरिक्त समय में मति-श्रुत ज्ञान परोक्ष हैं। जिसमें इन्द्रियों का निमित्त हो उस ज्ञान में तो इन्द्रियों के विषयभूत रूपी पदार्थ ही ज्ञात होते हैं, किन्तु कहीं अरूपी आत्मा उससे ज्ञात नहीं होता। भगवान चैतन्यसूर्य स्वयं अपने को प्रकाशे उसमें जड़ इन्द्रियों का निमित्त कैसा? अतीन्द्रिय ज्ञान स्वरूप आत्म-वस्तु प्रत्यक्ष ज्ञात है, वह स्वयं इन्द्रिय ज्ञान से नहीं जानता, उसी प्रकार इन्द्रिय ज्ञान से वह जानने में नहीं आता। मन के अवलम्बन से भी वह जानने में नहीं आता। मन के अवलम्बन से तो स्थूल परवस्तु परोक्ष जानी जाती है।

आँख द्वारा शरीरादि का रूप दिखता है, परन्तु आत्मा दिखाई नहीं देता। ज्ञान, रागादि से छूटकर, अन्तर्मुख होकर जब स्वयं अपने को पकड़ता है तब शान्ति का वेदन होता है। उस अतीन्द्रिय शान्ति के वेदन काल में सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को चौथे गुणस्थान में भी ज्ञान अतीन्द्रिय है इसलिए प्रत्यक्ष है। स्व तरफ झुका हुआ ज्ञान मात्र आत्म-सापेक्ष होने से प्रत्यक्ष है, उसमें अन्य किसी का अवलम्बन नहीं है – ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द से ही मोक्षमार्ग प्रारंभ होता है।

प्रश्न : आप कहते हैं कि आत्मा को देखो। अब आँख से तो आत्मा दिखता नहीं और आँख मींचने पर अन्दर अँधेरा अँधेरा लगता है, तो आत्मा को किस प्रकार देखें ?

उत्तर : भाई, इन्द्रिय ज्ञान से आत्मा नहीं दिखेगा, अतीन्द्रिय ज्ञान से ही आत्मा दिखेगा। आँख मींची तब भी "यह अँधेरा है, और जो अँधेरा है वह मैं नहीं" – ऐसा जाना किसने ? आत्मा ने या किसी अन्य ने ? अँधेरे को जानने वाला स्वयं कहीं अन्धा नहीं है, वह तो जागृत चैतन्य सत्ता है और वही आत्मा है। पहले चैतन्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तु कैसी है, यह बराबर लक्ष गत होना चाहिये, पश्चात उसका रस और अत्यन्त महिमा आने पर, परिणाम उसमें एकाग्र हों, तब, अनुभव में उसका साक्षात्कार होता है। "यह अँधेरा है" इस प्रकार अँधेरे को देखा किसने ? अँधेरा स्वयं अपने को तो देखता नहीं, किन्तु चैतन्य सत्ता देखती है कि यह अँधेरा है और मैं उसको जानने वाली हूँ। अँधेरे को जानने वाला "मैं अँधेरा हूँ" ऐसा नहीं जानता किन्तु "यह अँधेरा है" ऐसा जानता है, अर्थात् अँधेरे को जानने वाला अँधेरे से भिन्न है। बस ! यह जानने वाला तत्व ही आत्मा है, ओर अन्तर्मुख मति-श्रुत ज्ञान से ऐसे ज्ञान स्वरूप आत्मा को जान सकते हैं। आँख आदि से आत्मा को नहीं जान सकते। भाई, जिस चैतन्य तत्व में यह सब जाना जाता है वही तो तू है, उसको अन्दर विचार में ले। अनादि से स्वयं अपनी चैतन्य सत्ता का विचार किया नहीं। जानने वाला स्वयं "मैं हूँ" – इस प्रकार जानने वाला अपने अस्तित्व को ही न माने – यह आश्चर्य है।

हे जीव ! ज्ञान तो तेरा स्वरूप है और अँधेरा पर है। अंधकार और प्रकाश ये दोनों पर्यायें पुद्गल की हैं, उनको जानने वाला अरूपी ज्ञान आत्मा का है। ऐसे आत्मा का निर्णय करने के लिए अन्दर उद्यम करना चाहिए। तू बाहर में दस पांच लाख रूपया प्राप्त करने के लिए कितना परिश्रम प्रेम से करता है। घर-बार छोड़कर खाने-पीने की कठिनाई सहन करके भी परदेश में पैसा कमाने जाता है और दिन-रात मजदूरी करता है। तो यह अनादि-अनन्त महान सुख दाता अपनी अद्भुत ज्ञान लक्ष्मी कैसी है ? उसको प्राप्त करने और उसका अनुभव करने के लिए अन्तर में कितने प्रेम से उद्यम करना चाहिए ? बापू ! तेरी सच्ची लक्ष्मी तो यह सम्यग्ज्ञान है कि जो परम सुख देने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वाला है, अन्य पैसा आदि तो धूल – रजकण है, वह कहीं तेरी लक्ष्मी नहीं और उनमें से कभी तुझे सुख मिलने वाला भी नहीं है।

ज्ञान का स्वभाव प्रत्यक्ष अर्थात् अकेले आत्मा से जानने का है, जानने में पर का अवलंबन ले – ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। आँख से दृष्टिगोचर हो वह प्रत्यक्ष – यह व्याख्या सच्ची नहीं है। आँख बिना अकेले आत्मा से सीधा जो ज्ञान हो वह प्रत्यक्ष है और आँख आदि पर की अपेक्षा सहित जो ज्ञान हो वह तो परोक्ष है। प्रत्यक्ष ज्ञान में पर का आलम्बन नहीं होता। अरे, जानने का स्वभाव अपना है फिर उसमें पर के आलम्बन की पराधीनता कैसी ? परालम्बी परोक्ष ज्ञान से आत्मा ज्ञात नहीं होता। इन्द्रियातीत और राग से पार ऐसे स्वाधीन अतीन्द्रिय ज्ञान से आत्मा ज्ञात होता है। स्वाधीन कहो, अतीन्द्रिय कहो, प्रत्यक्ष कहो – वह ज्ञान स्पष्ट है, उसका प्रारम्भ चौथे गुणस्थान से हो जाता है। चौथे गुणस्थान में स्वानुभूति में सम्यक् मति-श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष होता है, उसमें इन्द्रियाँ और मन निमित्त नहीं हैं। ऐसा स्वानुभव-प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय ज्ञान आठ वर्ष की बालिका को भी होता है। उस सम्यग्दृष्टि बालिका को अन्तर में ध्यान के काल में अपने ज्ञानानन्दमय आत्मा का वेदन, राग और इन्द्रियों की अपेक्षा बिना होता है, उस समय होने वाले ज्ञान को अध्यात्म शैली में प्रत्यक्ष कहा जाता है। जब वह ध्यान में हो तब स्वानुभव में स्वयं अपने आत्मा को तन्मय होकर जानता है, तब बाहर में समस्त पर का लक्ष्य छूट जाता है। इस प्रकार ज्ञान स्वयं अपने में एकाग्र होकर अतीन्द्रियपने आत्मानुभव करता है तब आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्दरस की धारा उल्लसित होती है। सिंह वगैरह पशुओं में भी जो जीव सम्यग्दृष्टि हों उन्हें ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकट होता है। तीर्थंकर परमात्मा के समवशरण में सिंह, हिरण, हाथी, शशक आदि पशु भी आते हैं और उनमें से अनेक जीव ऐसे आत्मा का स्वरूप पहिचान कर प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय ज्ञान से उसका अनुभव करते हैं। महावीर भगवान के आत्मा ने सिंह पर्याय में ऐसा अनुभव किया था और पार्श्वनाथ भगवान की आत्मा ने हाथी की पर्याय में ऐसा अनुभव किया था। उस सिंह और हाथी को भी ऐसा प्रत्यक्ष – अतीन्द्रिय ज्ञान था। आज भी इस मध्यलोक में असंख्य पशु ऐसे आत्म ज्ञान सहित वर्तते हैं, मनुष्य भी करोड़ों अरबों हैं।

आहाहा! सम्यग्ज्ञान की शक्ति तो देखो, भाई! ऐसा ज्ञान स्वरूप आत्मा तू स्वयं है। यह शरीर या राग तू नहीं है, अन्दर आनन्दमय ज्ञानस्वरूप आत्मा है, वही तू है। ऐसे आत्मा का ज्ञान करने का यह अवसर है। लंका के राजा रावण के मुख्य हाथी "त्रिलोकमंडन" (जिसे रामचंद्रजी अपने साथ अयोध्या लाये थे) को भी ऐसा आत्मज्ञान हुआ था तथा पूर्व भव का जातिस्मरण ज्ञान भी हुआ था। यह भी आत्मा है न? इसमें भी ज्ञान शक्ति भरी है, उसे स्वयं स्व-संवेदन से प्रत्यक्ष अनुभव में लेकर उसने सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रकट किया था।

यह सम्यग्ज्ञान का प्रकरण चलता है। सम्यक् मति–श्रुत ज्ञान स्व-संवेदन काल में प्रत्यक्ष है और शेष काल में परोक्ष है। अवधि और मनःपर्ययज्ञान एकदेश प्रत्यक्ष हैं, वे इन्द्रियों और मन के निमित्त बिना अमुक मर्यादित क्षेत्र में रहने वाले अमुक ही पदार्थों को, उनके अमुक ही काल और अमुक भावों को ही जानते हैं, अर्थात् वे अधूरे हैं। जितना वे जानते हैं उतना तो प्रत्यक्ष जानते हैं, किन्तु अधूरा जानते हैं इसलिए उन्हें देश प्रत्यक्ष कहते हैं। श्रुतज्ञान में तो सभी पदार्थों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को परोक्ष जानने की शक्ति है – ऐसा कहा है। श्रुतज्ञान में विशेष शक्ति है और केवलज्ञान तो अद्भुत अचिन्त्य महिमा वाला सम्पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान है।

सम्यक् मति-श्रुत ज्ञान सभी सम्यग्दृष्टि साधक जीवों को होता है, अवधिज्ञान किन्हीं-किन्हीं जीवों को होता है। उनमें देशावधि चारों गतियों में होता है, नरक और स्वर्ग में तो सभी सम्यग्दृष्टि जीवों को होता है, और तिर्यंच तथा मनुष्य में किसी-किसी जीव को होता है। विशेष अवधिज्ञान (परमावधि तथा सर्वावधि) तो किसी विशेष मुनि को ही होता है। कुअवधिरूप विभंगज्ञान तो देव-नारकी में सभी जीवों को होता है, बहुत से तिर्यंचों और मनुष्यों को भी विभंगज्ञान होता है उससे वे अनेक द्वीप-समुद्रों को जान सकते हैं परन्तु मोक्षमार्ग में उसका कोई मूल्य नहीं है, वह कहीं वीतराग-विज्ञान नहीं है, वह तो अज्ञान है। सामान्य बैल आदि अज्ञानी प्राणी भी ज्ञान के कुछ उघाड़ से सामने वाले के मन की बात जान लेते हैं, वहाँ अज्ञानियों को आश्चर्य उत्पन्न होता है, किन्तु अतीन्द्रिय केवलज्ञान के अद्भुत अचिन्त्य सामर्थ्य की उन्हें खबर नहीं है। अरे ? सम्यग्दृष्टि के स्व-संवेदन में अतीन्द्रिय मति-श्रुत ज्ञान की कोई अपार शक्ति है, उसकी भी उसे खबर नहीं। ज्ञान तो किसे कहा जाय ? जो राग से पार होकर आनन्दरस में मग्न हुआ हो – ऐसा ज्ञान ही ज्ञान है, वह वीतराग-विज्ञान है, वही मोक्ष का कारण है। मनःपर्यय ज्ञान भी किसी विशिष्ट ऋद्धिधारी मुनि के ही होता है, उसमें विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान तो चरम शरीरी मुनिराज के ही होता है। केवलज्ञानरूप महा प्रत्यक्ष ज्ञान सर्व अरहन्त और सिद्ध भगवन्तों को होता है – इस प्रकार पांच प्रकार का सम्यग्ज्ञान जानकर उसकी आराधना करो।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलज्ञान प्रकट करके जो परमात्मा हुए, वे पहले अनादि से तो बहिरात्मा ही थे, उन्होंने पहले तो सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, उसके साथ मति-श्रुतरूप सम्यग्ज्ञान हुआ, अर्थात् बहिरात्मापना छोड़कर वे अन्तरात्मा हुए। बाद में शुद्धोपयोग से स्वरूप में लीन होकर चारित्ररूप मुनिदशा साधी। उसमें किसी को अवधि-मनःपर्ययज्ञान प्रकट होता है और किसी को नहीं भी प्रकट होता, उसके साथ मोक्षमार्ग का संबंध नहीं है। पश्चात् शुद्धोपयोग से स्वरूप में पूर्ण लीन होने पर वीतरागता और केवलज्ञान हुआ अर्थात् वे अरहन्त परमात्मा हुए। वे परमात्मा दिव्य शक्ति वाले केवलज्ञान से तीनलोक-तीनकाल को एक साथ प्रत्यक्ष जानते हैं। "णमोअरहंताणं" कहते ही ऐसी केवलज्ञान की प्रतीति साथ में आना चाहिए, तभी अरहन्तदेव को सच्चा नमस्कार हो सकता है। पंचपरमेष्ठी में अरहंत भगवान तथा सिद्ध भगवान केवलज्ञानी हैं। सीमंधरनाथ आदि लाखों अरहंत भगवान आज भी इस मनुष्यलोक में विचर रहे हैं। ऐसे केवलज्ञान की प्रतीति आत्मा के ज्ञानस्वरूप की प्रतीति पूर्वक होती है। ऐसा केवलज्ञान कैसे हो ? कि सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान पूर्वक उसका अनुभव करते-करते केवलज्ञान होता है, अन्य उपाय से केवलज्ञान नहीं होता। पहले सम्यग्ज्ञान भी शुभराग से नहीं होता किन्तु राग रहित आत्मा के अनुभव से ही होता हे, उसके बाद केवलज्ञान भी राग रहित आत्मा के अनुभव में एकाग्रतारूप शुद्धोपयोग से ही होता है – इस प्रकार पहिचाने तो ही केवलज्ञान को पहिचाना कहा जाय। राग से ज्ञान होना माने तो उसने केवलज्ञान को भी राग वाला मान लिया, क्योंकि राग को कारण माना तो उसका कार्य भी राग वाला ही होगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राग और ज्ञान की अत्यन्त भिन्नता जानकर ज्ञान स्वभाव का अनुभव करना वही केवलज्ञान का कारण है – इस प्रकार धर्मी जीव जानता है और वह ज्ञान के साथ राग को किंचित् भी मिलाता नहीं है। वीतराग-विज्ञान से वह केवलज्ञान और मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

चैतन्य की अगाध शक्ति वाला और सर्वथा राग रहित ऐसा केवलज्ञान है, उस केवलज्ञान का स्वीकार राग से नहीं हो सकता वह तो ज्ञान स्वभाव की सन्मुखता से ही होता है। ज्ञान स्वभाव के सन्मुख होने पर राग से भिन्न पडा अर्थात् अपने में भेद-ज्ञान होकर सम्यग्ज्ञान हुआ, तब सर्वज्ञ की भी सच्ची पहिचान हुई। उस ज्ञान के साथ राग रहित वीतरागी सुख भी साथ ही है। सम्यक् मति-श्रुतज्ञान राग से भिन्न केवलज्ञान की जाति का है तथा वह ज्ञान के साथ केलि करने वाला है।

इस प्रकार सम्यग्ज्ञान का स्वरूप पहिचान कर उसका सेवन करो, क्योंकि जगत में सम्यगान के समान अन्य कोई भी इस जीव को सुख का कारण नहीं है। सम्यग्ज्ञान ही जन्म-मरण के दुःखों को मिटाने वाला और मोक्ष-सुख देने वाला परम अमृत है। यह बात अगले श्लोक में कहेंगे।

सम्यग्ज्ञान की महिमा

अहो ! जीव को परमसुख का कारण सम्यग्ज्ञान है, अतः उसकी महिमा बताते हैं तथा उसका उत्तम फल बताकर उसकी आराधना का उत्साह जागृत करते हैं :–

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन ।
इह परमामृत जन्म–जरा–मृतु रोग निवारन ।। ४।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोटि जन्म तप तपैं ज्ञान बिन कर्म झरैं जे ।
ज्ञानी के छिन मांहि त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते ।।
मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो ।
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायौ ।। ५।।

अहो ! जगत में जीव को सम्यग्ज्ञान के समान सुख का कारण अन्य कोई नहीं, पुण्य या पाप के भाव सुख के कारण नहीं, बाहर का कोई वैभव सुख का कारण नहीं, अन्तर में चैतन्य का परिणमन ही जीव को सर्वत्र सुख का कारण है। जन्म-जरा-मरण के रोग का निवारण करने के लिए यह सम्यग्ज्ञान परम अमृत है। इस अमृत से जन्म-मरण का नाश करके जीव अमर पद को पाता है।

सम्यग्ज्ञान बिना करोड़ों जन्मों में तप तपने से अज्ञानी के जो कर्म झरते हैं, वे कर्म ज्ञानी के त्रिगुप्ति से एक एक क्षण में सहज टल जाते हैं। सम्यग्ज्ञान के प्रताप से ज्ञानी को मन-वचन-काय से भिन्न चैतन्य परिणति सदा वर्तती है और उससे उसे सहज निर्जरा हुआ ही करती है। ऐसी निर्जरा अज्ञानी को बहुत तप से भी नहीं होती। अज्ञानी जीव अनन्त बार मुनिव्रत धारण करके नवमी ग्रैवेयक तक उपजा, परन्तु अपने आत्मज्ञान बिना लेश मात्र भी सुख नहीं पाया। देखो तो सही ! अज्ञानी के पंचमहाव्रत भी किंचित् सुख के कारण नहीं हैं, कहाँ से हों ? वह तो शुभराग है और राग भला सुख का कारण कैसे हो सकता है ? राग के फल में तो बाहर के संयोग मिलते हैं और अन्दर आकुलता होती है, किन्तु कहीं चैतन्य की शान्ति राग से नहीं मिलती, वह तो चैतन्य के ज्ञान से ही मिलती है।

अंतरंग में राग से पार आत्मा के शुद्ध स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हुआ वह सम्यग्ज्ञान है; वहाँ बाहर का विशेष जानपना हो या न हो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शास्त्र ज्ञान कम हो या विशेष, उसके साथ संबंध नहीं है। आत्मा को जानने वाला सम्यग्ज्ञान स्वयं ही सुख का कारण है। आत्मा के अतीन्द्रिय सुख के अनुभव सहित ही सम्यग्ज्ञान प्रकट होता है और वह स्वयं परम सुख से भरा है। आत्मा के ज्ञान के परिणमन के साथ सुख का परिणमन भी साथ ही है। सम्यग्ज्ञान के अन्दर तो चैतन्य के अनन्त भाव भरे हैं। अरे ! सम्यग्ज्ञान की महिमा की जगत को खबर नहीं हैं। सम्यग्ज्ञान जैसा सुखकारी तीन काल तीन लोक में अन्य कोई नहीं है। पहले कहा भी था :–

"तीन लोक तिहुँ काल मांहि नहिं दर्शन सो सुखकारी"

और यहाँ सम्यग्ज्ञान के लिए कहते हैं –

"ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण"

देखो तो सही, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की परम महिमा। उसको परमहित रूप जानकर हे भव्य जीवो ! उसकी आराधना करो।

आत्मा के सम्यग्ज्ञान में सर्व समाधान और परमसुख है, वह संसार का सम्पूर्ण विष उतारने वाला उत्कृष्ट अमृत है। सुख के लिए अन्य कुछ मत शोधो। अन्तर्मुख होकर अपने आत्मा का सम्यग्ज्ञान करो। आनन्द की उत्पत्ति तेरे सम्यग्ज्ञान में है। कुटुम्ब में, पैसे में, शरीर में कहीं आनन्द मिलने वाला नहीं है। आत्मा के सम्यग्ज्ञान बिना देव लोक के देव भी दुःखी हैं, तो फिर अन्य की क्या बात ? शुभराग, पुण्य और उसका फल – यह सब आत्मा के ज्ञान से भिन्न हैं; उस राग में, पुण्य में, पुण्य के फल में कोई सुख माने तो उसे सच्चे ज्ञान की और सच्चे सुख की खबर नहीं है। ज्ञान और सुख के बहाने वह अज्ञान और दुःख का ही वेदन करता है। बापू ! सुख और ज्ञान तो तेरा स्वभाव है उसकी पहचान कर, तो ही सम्यग्ज्ञान और अतीन्द्रिय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सुख का अनुभव होगा। अतीन्द्रिय ज्ञान में जो सुख है वह सुख इन्द्र पद में नहीं, चक्रवर्ती पद में नहीं, जगत में अन्य कहीं भी नहीं, अर्थात् ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कहीं सुख है ही नहीं। सम्यग्ज्ञान में अधिक सुख और अन्यत्र अल्प सुख – ऐसा नहीं है। सम्यग्ज्ञान में सुख है, अन्यत्र कहीं है ही नहीं। इस अपेक्षा से केवली भगवन्तों को एकान्त सुखी कहा है।

अहो, सम्यग्ज्ञान तो परम अमृत है। "अमृत" अर्थात् मरण रहित मोक्ष पद, वह सम्यग्ज्ञान से प्राप्त होता है, अतः सम्यग्ज्ञान परम अमृत है, वह जन्म-जरा-मरण के रोग को मेटकर मोक्ष रूपी अमर पद देने वाला है। बाहर की पढ़ाई और लौकिक ज्ञान जिसमें काम नहीं आता, जो आत्मा में से ही आता है – ऐसा यह सम्यग्ज्ञान परम अमृत है। आत्मा का स्वभाव अनाकुल आनन्दरूप अमृत है, उसमें तन्मय होकर उसको जानने वाला ज्ञान भी आनन्द रूप हुआ है, अतः वह भी परम अमृत है, और ऐसे स्वरूप को दिखाने वाली वाणी को भी उपचार से अमृत कहा जाता है। "वचनामृत वीतरागना परम शांतरस मूल" ऐसी वीतराग वाणी द्वारा होने वाला आत्मा का सम्यग्ज्ञान जीव के भव रोग को मिटाने वाली अमोघ औषधि है। शरीर में भले वृद्धावस्था हो या बालक अवस्था हो, नरक में हो या स्वर्ग में हो, रोगादि हो या निरोगता हो, परन्तु ऐसा सम्यग्ज्ञान सर्वत्र परम शान्ति देने वाला है।

आत्मा का ज्ञान, आनन्द सहित है, जिसमें आनन्द नहीं वह ज्ञान नहीं। जो दुःख का कारण हो उसे ज्ञान कौन कहे ? वह तो अज्ञान है। ज्ञान तो तीनकाल तीनलोक में अपूर्व सुख का ही कारण होता है, वह परम अमृत है। ऐसा ज्ञान ही जन्म-मरण का नाश करके मुक्ति सुख पाने का उपाय है, ज्ञान के अतिरिक्त अन्य उपाय जगत में नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। जो जीव पहले सिद्ध हुये हैं, वर्तमान में हो रहे हैं और भविष्य में होंगे, वे सब भेद-ज्ञान से ही सिद्ध हुये हैं, हो रहे हैं और होंगे – ऐसा जानो।

जो हो गये हैं सिद्ध वे सब भेद-ज्ञान प्रभाव से ।
जो बंध होता जीव को वह भेद-ज्ञान अभाव से।।

ऐसा जानकर हे जीव! तू अतुल धारा से भेदज्ञान को भा, रागादि से भिन्न शुद्धात्मा को जानकर उसको ही निरन्तर भा। भेद-ज्ञानी जीव सदा आत्मा के आनन्द में केलि करता है और केलि करते-करते वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

अहो, मैं तो परमानन्द स्वरूप हूँ जगत से भिन्न और स्वयं से परिपूर्ण हूँ, सिद्ध भगवान जैसा मेरा चैतन्य पद है, इस प्रकार जिस ज्ञान ने आत्मा की कीमत की, उस ज्ञान में अपूर्व ज्ञानकला उघड़ी, उसी से वह अब शिव मार्ग को साधता है और उसे शरीर वास छूटकर सिद्ध पद प्राप्त होता है। भेद-ज्ञान कला से जीव ऐसा अनुभव करता है – "चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो" अपने ही वेदन से वह निःशंक जानता है कि "ज्ञान कला उपजी अब मोहि" मुझे ज्ञान कला उपजी है उसके प्रसाद से मैं मोक्षमार्ग को साध रहा हूँ और अल्प काल में इस भव से छूटकर मैं सिद्ध पद को प्राप्त करूँगा।

ऐसे आत्मज्ञान की अपार महिमा और अपार कीमत जाननी चाहिए। अरे! अनन्त चैतन्य गुणों में बसने वाला मैं, इस मिट्टी के घर में ममता करके बसना मुझे शोभा नहीं देता। मैं देह नहीं, मैं तो देह से भिन्न ज्ञान स्वरूप आत्मा हूँ – ऐसा सम्यग्ज्ञान होने पर अब ज्ञान कला जगी है, उस ज्ञान कला के प्रसाद से अब इस मिट्टी के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

घड़े में से छूट जाऊँगा और अशरीरी होकर सिद्धालय में रहूँगा, फिर कभी इस शरीर में या संसार में नहीं आऊँगा। देखो ! यह सम्यग्ज्ञान का प्रसाद ! सऐसे ज्ञान के प्रसाद से मुक्ति प्राप्त होती है। सम्यग्ज्ञान के प्रताप से अब इस हाड़-माँस के पिंजरे में रहना बन्द हो जावेगा और आनन्दमय मोक्ष महल में सदा रहूँगा। इस प्रकार सम्यग्ज्ञान के अमृत से जन्म-मरण का रोग मिटता है और परम सुख होता है। जगत में जीव को ज्ञान समान अन्य कोई सुख का कारण नहीं है – इस प्रकार सम्यग्ज्ञान की महिमा जानकर उसकी आराधना करो।

सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यग्ज्ञान होता है और सम्यग्दर्शन ज्ञान पूर्वक ही सच्चा चारित्र होता है। उसमें सम्यग्दर्शन तो पर से भिन्न शुद्धात्मा की श्रद्धारूप है और पर से भिन्न निज स्वरूप का ज्ञान सम्यग्ज्ञान कला है। जब आत्मा को शरीरादि से भिन्न तथा रागादि परभावों से भिन्न निज स्वरूप से अनुभव में लिया तब सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ प्रकट हुआ। जिसने देह से भिन्न आत्मा को नहीं जाना और देह में ही अपनापन मानकर रुक गया उसको आत्मा का सम्यग्दर्शन या सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकता। शरीर से भिन्न आत्मा न जाना तो फिर शरीर रहित सिद्धपद कहाँ से पायेगा ? वह चाहे जितना व्रत-तप करे तथापि मोक्ष को नहीं पा सकता। उस अज्ञानी के सम्यग्ज्ञान बिना करोड़ों जन्मों में तप करने से जितने कर्म खिरते हैं, उतने कर्म (उनसे भी अधिक कर्म) ज्ञानी के शुद्ध ज्ञान के बल से एक क्षण में खिर जाते हैं। उसने रागादि बन्ध भावों से अपने आत्मा को भिन्न जाना है और वह मोक्षमार्गी हुआ है, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के प्रभाव से उसके अनन्त कर्मों की निर्जरा हुआ ही करती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्ज्ञान ही आत्मा के सुख का कारण है। सम्यग्ज्ञान कहते ही उसके साथ का चारित्र भी सुख का कारण है – ऐसा समझ लेना और ज्ञान के बिना कोई भी आचरण जीव को सुख का कारण नहीं होता – ऐसा जानना। उस सम्यग्ज्ञान में मति-श्रुतादि पाँच प्रकार हैं, उनमें से अवधि-मनःपर्यय तो हो या न हो वास्तविक कार्य तो स्वसन्मुख मति-श्रुतज्ञान से होता है। जो पर लक्ष्य छोड़कर, शुभ विकल्प से भी छूटकर, ज्ञान स्वरूप आत्मा को स्वज्ञेय बनाकर जाने वह सम्यक् मति-श्रुतज्ञान है, वह ज्ञान अतीन्द्रिय आनन्द सहित है, स्वानुभव में प्रत्यक्ष है और मोक्ष का साधक है। हे भाई! ज्ञान के अन्तर अभ्यास से तू ऐसे आत्मा को अनुभव में ले। (आपो लख लीजे) भगवान द्वारा कथित तत्त्व का अन्तरंग में अभ्यास करके, संदेह रहित होकर अपने ज्ञान स्वरूप आत्मा को जान। क्योंकि बारबार चिन्तामणि समान ऐसा अमूल्य अवसर मिलना कठिन है यह बात अगली गाथा में कहेंगे।

अपने ज्ञान स्वरूप आत्मा के चैतन्य स्वाद को राग से अत्यन्त भिन्न जानना ही सम्यक् मति-श्रुतज्ञान का उपाय है। ऐसे ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई सुख का कारण नहीं है। सुख शरीर में तो नहीं, शुभ राग में भी नहीं, और उससे पुण्य बाँधकर उसमें मिलने वाले फल में भी नहीं। भाई, यह बाहर की वस्तु तेरी नहीं, वह तेरे में घुस नहीं गई। वह तुझसे पर है फिर भी तू उसमें ममता करके आकुलता करता है, वही दुःख है। तेरा आत्मा तो ममता से भी जुदा ज्ञान स्वरूप है, ऐसे ज्ञान स्वरूप आत्मा का लक्ष्य करके उसका ज्ञान कर। भाई, तूने अपनी सम्हाल नहीं की, अज्ञान से अपने को भूलकर राग और शरीर में धर्म मानकर अनन्त बार तूने व्रत-तप किये, महान शास्त्र भी पढ़े, किन्तु अपना ज्ञान स्वरूप चैतन्य भगवान आत्मा अन्दर राग से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भिन्न कैसा है – उसे नहीं जाना, इसलिए तूने किंचित् भी सुख नहीं पाया, व्रतादि का शुभराग करके भी तू दुःखी ही रहा, इसलिए उस राग से भिन्न दूसरा कोई सुख का उपाय खोज। वह उपाय सम्यग्ज्ञान ही है। शुभराग कहीं अमृत नहीं है, उसमें सुख नहीं है, अमृत और सुख तो आत्मा के ज्ञान करने में ही है। इसलिए कहा है :–

"ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण
इहा परमामृत जन्म–जरा–मृत रोग निवारन"

अन्तर में राग से पार आत्मा का ज्ञान करना ही अतीन्द्रिय आनन्द दाता अमृत है। चौथे गुणस्थान में जहाँ ऐसा सम्यग्ज्ञान हुआ वहाँ केवलज्ञान की प्रतीति भी साथ आ गई, क्योंकि पूर्ण ज्ञान स्वभाव के स्वीकार पूर्वक सम्यग्ज्ञान हुआ है। अहो ? अचिन्त्य सामर्थ्य वाले केवलज्ञान की प्रतीति तो राग और ज्ञान के भेद-ज्ञान से ही होती है। ज्ञान स्वभाव में प्रतीति घुस गई तब केवलज्ञान का सच्चा स्वीकार हुआ, उसकी परिणति राग से छूटकर ज्ञान स्वभाव में तन्मय हुई, उसमें अब राग अथवा पर का कर्तव्य नहीं रहा। राग सहित केवलज्ञान की प्रतीति करे और रागादि का कर्तव्य भी रहे – ऐसा नहीं बनता। केवलज्ञान की प्रतीति करने वाले ज्ञान में तो अनन्त धीरज और वीतरागता हो गई, उस भाव में किसी पर भाव का कर्तव्य नहीं रहा। सर्व पर भावों से न्यारा मैं तो ज्ञान हूँ – ऐसे भेद-ज्ञान से ज्ञानी जीव वीर हुआ, वह स्वयं तो अब ज्ञाता होकर सम्यग्ज्ञान रूप से ही परिणमता है, रागाधीन नहीं होता, राग से उसका ज्ञान दबता नहीं, भिन्न ही रहता है। ऐसे ज्ञान के बिना जगत में सुख नहीं। अरे, जिस ज्ञान ने महान अतीन्द्रिय केवलज्ञान को प्रतीति में लिया वह ज्ञान भी कितनी अद्भुत शक्ति वाला है। उसमें कितनी शान्ति है। केवलज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को प्रतीति में लेकर ऐसी अपूर्व ज्ञान दशा प्रगट हो तब तो "णमो अरिहंताणं" – ऐसा कहना सच्चा होगा, वह जीव सच्चा जैन होकर जिन मार्ग में चलना प्रारम्भ करता है।

केवलज्ञान वह पूर्ण ज्ञान है, मति-श्रुत ज्ञान उस ज्ञान का अवयव है, भले वह अधूरा है किन्तु है तो वह ज्ञान की ही जाति का अर्थात् वह भी केवलज्ञान की जाति का ही है। एक ही पिता के दो पुत्रों की तरह केवलज्ञान और मतिज्ञान दोनों ज्ञान की ही जाति हैं, एक ज्ञान के ही परिणमन हैं। जिस प्रकार केवलज्ञान में राग का कर्तृत्व नहीं, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि के मति-श्रुतज्ञान में भी ज्ञान से भिन्न रागादि का कर्तृत्व नहीं है, ज्ञान स्वभाव में ही तन्मय होकर परिणमता हुआ उसका ज्ञान भी केवलज्ञान के समान ही राग और पर का ज्ञाता ही है। उनसे भिन्न रहकर उनको जानता है। ऐसा मति-श्रुतज्ञान अतिन्द्रिय सुख को साथ लेकर प्रकट होता है और बाद में वह सुख बढ़ता-बढ़ता केवलज्ञान होने पर परिपूर्णता को प्राप्त हो जाता है। अहो ! इस ज्ञान और सुख की महिमा की क्या बात ? केवलज्ञान में ऐसी अचिन्त्य सामर्थ्य है कि अनन्त जैसे आकाश को भी वह अनन्त रूप से जान लेता है, एक साथ तीनकाल, तीनलोक को जाने, तथापि कहीं विकल्प नहीं करता अपने वीतरागी चैतन्यरस में ही लीन रहता है। ज्ञान के ऐसे स्वाद का निर्णय सम्यग्दृष्टि को ही होता है। प्रत्येक जीव में ऐसा ज्ञान स्वभाव है, उसकी प्रतीति करके हे जीवो ! उसका सेवन करो।

मति-श्रुतज्ञानी सम्यग्दृष्टि जानता है कि हम भी सर्वज्ञ पद के साधने वाले सर्वज्ञ देव के पुत्र हैं। गणधर-मुनिवरादि बड़े पुत्र हैं, और हम अविरत सम्यक्त्वी छोटे पुत्र हैं, हम भी राग से जुदा पड़ गये हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान और राग की भिन्नता के भेद-ज्ञान से राग के साथ का संबंध तोड़कर सर्वज्ञ पद के साथ सम्बन्ध बाँधा है इसलिए हमारा चित्त परमशान्त हुआ है और गणधरादि की तरह हम भी प्रभु के मोक्षमार्ग में आनन्द से चले जा रहे हैं।

गौतम गणधर को "सर्वज्ञपुत्र" कहा है। पं. बनारसीदासजी ने भी सम्यग्दृष्टि को "जिनेश्वर का लघुनन्दन" कहा है। मुनिराज तो ज्येष्ठ पुत्र हैं और सम्यग्दृष्टि – चौथे गुणस्थानवाले कनिष्ठ पुत्र हैं, भले छोटे हैं किन्तु हैं सर्वज्ञपुत्र ही, सर्वज्ञ की जाति के ही। जैसे सिंह का छोटा बच्चा भी बड़े हाथी को भगा देता है, वैसे ही सम्यग्दृष्टि भले छोटा है, किन्तु है सर्वज्ञ का पुत्र, उसका ज्ञान भले थोड़ा है किन्तु है सर्वज्ञ की जाति का सम्यग्ज्ञान ही, वह सम्पूर्ण मोह रूपी हाथी को भगाकर मोक्ष को साधे – ऐसी शक्ति वाला है, रागादि विकल्पों को अपने ज्ञान से वह भिन्न जानता है। जड़ क्रिया मैं नहीं, राग मैं नहीं, मैं तो ज्ञान हूँ, पर के पास से मेरी परिणति मुझे लेनी नहीं और पर की परिणति को मैं करता नहीं। मेरे ज्ञान को और राग को ज्ञाता-ज्ञेयपना है, किन्तु कर्ता-कर्मपना नहीं है, एकपना नहीं है, भिन्नपना है – ऐसे भेद-ज्ञान से जो भेदज्ञानी हुआ उसने अपने चैतन्य के अमृत का स्वाद चखा, तब विष जैसे विषयों का रस उसको नहीं रहा। जैसे पं. बनारसीदास जी पहले अज्ञानदशा में विषय-विलासी थे, परन्तु जब अन्तर में आत्मा का भान हुआ, सत्य स्वरूप समझ में आया और आत्मा के ज्ञान का वीतरागी सुख चखा, तो विषयों से विरक्ति हो गई, तब उन्होंने कहा :–

ज्ञानकला उपजी अब मोहि कहूँ गुण नाटक आगम केरो,
जासु प्रसाद सधै शिवमारग वेग मिटे भव वास बसेरो ।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस आत्मा को सिद्ध समान होने पर भी अज्ञान से मोह दशा में अनन्त काल व्यतीत हो गया, परन्तु अब हमको सम्यग्ज्ञानकला प्रकटी है, इसलिए हम आत्मा के आनंद का अनुभव करते-करते शिवमार्ग में जा रहे हैं। देखो, सम्यग्दृष्टि की निशंकता। जिसे सम्यग्दर्शन हुआ वह तो सर्वज्ञ परमात्मा का वंशज हो गया, वह जगत में प्रशंसनीय है। सम्यग्ज्ञान, चाहे वह केवलज्ञान हो, चाहे मति-श्रुतज्ञान हो, वह आत्मा के सुख का दातार है। सम्यग्ज्ञान के साथ सदा चैतन्य का अतीन्द्रिय सुख होता है, उस जैसा सुख जगत में कोई नहीं है। जिसे ऐसा सम्यग्ज्ञान हुआ, उसके हाथ में जन्म-मरण के नाश का उपाय आ गया। सम्यग्ज्ञान के बिना जीव चाहे कितनी शुभ क्रियायें करे तो भी जन्म-मरण का अन्त नहीं हो सकता। अतः हे जीवो ! जन्म-मरण का नाश करने के लिए तुम सम्यग्ज्ञान का सेवन करो।

अरे ! सम्यग्ज्ञान के बिना स्वर्ग का देव भी दुःखी ही है, चैतन्य के सुख का अंश भी वहाँ नहीं है। जिसको आत्मज्ञान नहीं है वह जीव त्यागी होकर तप तपे और स्वर्ग में जावे तथापि लेश मात्र सुख प्राप्त नहीं करता। तप में भी वह "तपता" ही है, चैतन्य की शान्ति में ठहरता नहीं, किन्तु परभाव में तपता है – जलता है। चैतन्य के प्रतपनरूप सच्चे तप में तो परम शान्ति का वेदन होता है, अतीन्द्रिय शान्ति के बरफ में आत्मा ऐसा ठहरता है कि बाहर का लक्ष्य भी नहीं रहता, यही सच्चा तप है। इस तप का तो जिसे भान नहीं, उसे अज्ञान सहित व्रत-तपादि शुभ क्रियाओं में जो कर्म खपते हैं, वे कर्म ज्ञानी को तो सहज मात्रा में खप जाते हैं। त्रिगुप्ति अर्थात् मन-वचन-काय से भिन्न ज्ञान परिणति, उसके कारण ज्ञानी को कर्मों की निर्जरा होती ही रहती है – ऐसा जानना। मेरी चैतन्य वस्तु कर्म

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहित है, इसका जिसको विचार भी नहीं, उसे भला कर्मों की वास्तविक निर्जरा कैसे हो सकती है ? नवीन बंध पूर्वक होने वाली निर्जरा ही सच्ची निर्जरा हैं और वह ज्ञानी को होती है।

मनुष्य होकर जैनकुल जैसे उत्तम कुल में जन्म लेने का महान सौभाग्य मिला हो, एक करोड़ पूर्व की आयु हो और आठ वर्ष की उम्र में आत्मा के ज्ञान बिना मुनि दीक्षा लेकर जीवन भर द्रव्यलिंगपने पंचमहाव्रतों का भलीभाँति पालन करे, तप करे छह-छह माह के उपवास किया करे – इस प्रकार शुभराग की क्रियायें बराबर करे (और वह भी एक बार नहीं अपितु संसार में भटकते-भटकते करोड़ों भव तक करे) और उससे जितने कुछ कर्म निर्जरित हों, अर्थात् मिथ्यात्वादि नवीन कर्मों के बंधन सहित पुराने कर्म निर्जरित हों उनकी अपेक्षा ज्ञानी के सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के कारण एक उच्छवास मात्र में अनन्त गुणे कर्म खिर जाते हैं और मिथ्यात्वादि नवीन कर्म तो उसके बंधते ही नहीं। अज्ञानी महाव्रती हो तथापि उसके मिथ्यात्व कर्म तो बँधा ही करता है, जबकि ज्ञानी अव्रती हो फिर भी उसके मिथ्यात्वादि कर्म नहीं बँधते और अज्ञानी की अपेक्षा उसके बहुत कर्म खिर जाते हैं।

राग से जुदा पड़ी हुई ज्ञान चेतना जब ज्ञानी के अन्तर में जगी, तब अनन्त कर्म खिर जाते हैं। अरे, ज्ञान चेतना की अपार महिमा की जगत को खबर नहीं है, ज्ञान चेतना अनादि के संसार को एक क्षण में काट देती है और अल्प काल में अनन्त काल के मोक्ष सुख को प्रदान करती है। अज्ञान भाव से जीव करोड़ों-अरबों वर्ष तक शुभ क्रिया करे तथापि उसके भव कट्टी [1] नहीं होती और आत्मा के सच्चे सुख का अंश भी प्रकट नहीं होता। अज्ञानी जीव इस प्रकार

1. भवट्टी = भव का अभाव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनन्त बार नवमी ग्रेवेयक गया तो भी, शास्त्र कहते हैं कि आत्मज्ञान बिना उसने लेशमात्र भी सुख नहीं पाया, अर्थात् महाव्रतादि शुभ क्रिया करके भी अज्ञान के कारण मात्र दुःख ही भोगा, उसे रंच भी धर्म नहीं हुआ। अरे ! अज्ञान से सुख या धर्म कहाँ से होगा ? जिसको शुद्ध स्वभाव का अनुभव है – ऐसा ज्ञानी विकल्प से पार होकर ज्ञान स्वरूप में एक क्षण भी ज्ञान को एकाग्र करे तो अनन्त कर्म छट जाते हैं और उसके ज्ञान में चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होता है।

ज्ञान जब निर्विकल्प शुद्ध उपयोगरूप होकर अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में ठहरा, उस दशा की तो बात क्या ? उसके अतिरिक्त काल में भी ज्ञानी के सुगमता से बहुत कर्म खिरते ही रहते हैं। अज्ञानी को कष्ट सहन करते हुए भी मोक्ष के कारण स्वरूप निर्जरा नहीं होती, जबकि ज्ञानी को कष्ट बिना सहजपने कर्म छूट जाते हैं। अरे, मोक्ष की साधनभूत निर्जरा में तो आनन्द का वेदन होगा कष्ट का नहीं, तप में कष्ट कैसा ? तप में तो आनन्द ही है। जहाँ कष्ट लगे वहाँ तो आर्त्तध्यान है। धर्मध्यान में तो आनन्द है, शान्ति है। ऐसी शान्ति के वेदन से ज्ञानी के क्षण भर में अनन्त कर्म नष्ट हो जाते हैं।

अरे, ज्ञान की कीमत की जगत को खबर नहीं है। राग से भिन्न परिणमित सम्यग्ज्ञान अचिन्त्य शक्ति वाला है, परम शान्ति वाला है। भगवान ! तू जाग। अपने ज्ञान की जागृत दशा कर। इसके बिना शुभराग से तुझे कोई लाभ होने वाला नहीं है। जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं, आत्मा का आनन्द नहीं, ऐसे अज्ञान सहित महाव्रत जीव ने अनन्त बार धारण किए और नवमी ग्रैवेयक तक गया, परन्तु किंचित मात्र भी सुख वहाँ नहीं पाया। राग के फल में सुख कहाँ से मिले ? बापू !

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चैतन्य का अनुभव राग से पार है, चैतन्य का सुख राग से पार है, चैतन्य का धर्म राग से पार है। अज्ञानी ने महाव्रत किए, दान-पूजादि किए, किन्तु वह तो विकल्प है, राग है, वह कहीं चैतन्य के स्वभाव की जाति नहीं है, भिन्न जाति है अर्थात् कुजाति है। देखो, सन्त जन सत्य वस्तु को प्रसिद्ध कर रहे है कि हे भाई ! पुण्य के राग से पार ऐसे आत्मा के ज्ञान बिना तेरे द्वारा अनन्त बार महाव्रत धारण करने पर भी सुख का लेश भी तुझे मिला नहीं, क्योंकि तूने राग से पार ज्ञान का किंचित् भी सेवन नहीं किया। दुःख के कारणभूत राग का ही सेवन किया। जिसमें राग की क्रिया ही नहीं, ऐसे ज्ञान स्वरूप भगवान आत्मा को नहीं जाना और राग के सेवन में हित मानकर सन्तुष्ट हो गया, इसलिए तेरा अनन्त काल सुख बिना बीत गया। अब ऐसा अवसर पाकर तू चेत....चेत ! अपनी आत्मा का लक्ष्य करके आत्मा का ज्ञान कर। ऐसे ज्ञान से तुझे अपूर्व सुख का अनुभव होगा।

जहाँ राग – विकल्प का कर्तत्व है, वहाँ संसार है। देह की क्रिया अथवा विकल्प का कर्ता मैं नहीं, विकल्प से पार आनन्द स्वरूप सम्यग्ज्ञान ज्योति मैं हूँ, ऐसी वस्तु का अनुभव अर्थात् श्रद्धा ज्ञान बिना कुछ भी हाथ आने वाला नहीं है। आत्म ज्ञान बिना यह जीव व्रतादि करके स्वर्ग में गया फिर भी उसका जन्म-मरणरूप परिभ्रमण तो खड़ा ही रहा, उसका अन्त तो आया ही नहीं और सुख का अंश भी मिला नहीं। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी धर्मात्मा अव्रती गृहस्थ हो, उसके कुटुम्ब-परिवार हो, त्यागी न हो, तथापि अन्तर में राग से पार चैतन्य तत्त्व मैं हूँ – ऐसे ज्ञान और अनुभव के बल से वह अल्पकाल में चारित्र दशा प्रकट करके, मुनि होकर, राग को सर्वथा तोड़कर मुक्ति प्राप्त करेगा। देखो तो सही, यह सम्यग्ज्ञान की महिमा ! ज्ञान तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

महान अमृत है, उस जैसा सुख जगत में किसी विषय में नहीं है, शुभराग में भी नहीं है। ऐसा ज्ञान ही जन्म-मरण का रोग नाश करने की परमौषधि है।

देवलोक में ६ स्वर्ग से ऊपर नवग्रैवेयक के देवस्थान हैं, वहाँ मिथ्यादृष्टि भी साधु होकर अनन्त बार गया, यद्यपि नवग्रैवेयक में सभी जीव मिथ्यादृष्टि नहीं हैं, वहाँ सम्यग्दृष्टि ही अधिक हैं, मिथ्यादृष्टि तो थोड़े ही हैं। महाव्रत धारण किए बिना कोई जीव वहाँ नहीं जा सकता। ऐसे देवलोक में अज्ञानी जीव द्रव्य साधु होकर महाव्रत पालन करके गया, किन्तु अन्दर राग से और पुण्य से भिन्न अपना आत्मा कैसा है, यह नहीं जाना। ग्यारह अंग और नवपूर्व तक का शास्त्र ज्ञान किया, फिर भी उससे लेश भी सुख नहीं पाया। देवलोक में असंख्य वर्ष रहा, परन्तु सुख किंचित् भी नहीं पाया। हाँ, कोई जीव वहाँ आत्मज्ञान प्रकट करे और सुख पावे – वह दूसरी बात है। परन्तु वह सुख तो आत्मज्ञान से पाया है, कहीं शुभ राग के कारण से नहीं। आत्मा स्वयं सुख है, उसमें परिणाम न जोड़े तो शास्त्र का जानपना अथवा व्रतादि शुभराग क्या करेंगे? अर्थात् इनसे क्या लाभ होगा? भाई, अपने सुख-समुद्र आत्मा में उपयोग को जोड़ने पर तुझे अपूर्व शान्ति वेदन में आयेगी – ऐसे ज्ञान को आत्मज्ञान कहते हैं और वही सुख का कारण है।

महाव्रत पालन करके ग्रैवेयक में जाने पर भी जीव को लेश भी सुख प्राप्त नहीं हुआ। यह कहीं अकेले अभव्य की बात नहीं है, अभव्य की तरह भव्य जीव भी अज्ञानपने द्रव्य साधु होकर महाव्रत पालकर अनन्त बार ग्रैवेयक में गया है, किन्तु आत्मज्ञान के बिना लेश मात्र भी सुख नहीं मिला। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने भी कहा है –

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यम नियम संयम आप कियो,
पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो।
वनवास लियो मुख मौन रह्यो,
दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो।
सब शास्त्रनि के नय धारि हिये,
मत मंडन खंडन भेद लिए।
यह साधन बार अनन्त किए,
तदपि कछु हाथ हजू न पर्‌यो।
अब क्यों न विचारत है मन से,
कुछ और रहा उन साधन से।

हे भाई, शुभराग की जो बात अनन्त बार करने पर भी तेरे हाथ में कुछ भी सुख नहीं आया, तेरे भव का अन्त नहीं आया, तो तू विचार कर कि इसके अतिरिक्त अन्य कुछ साधन शेष रह गया है और वह साधन है आत्मज्ञान, जिसे यहाँ बतलाते हैं।

आगम में भगवान ने भी ज्ञान को ही मोक्ष का कारण कहा है। कारण कि जो परमार्थ ज्ञान से रहित है ऐसे अज्ञानी के व्रत-तप को बालव्रत और बालतप कहा है, अर्थात् वह मोक्ष का कारण नहीं – ऐसा कहा है। अज्ञानी के महाव्रत को तो "बालव्रत" कहा है। ऐसे बालव्रत अर्थात् अज्ञानव्रत को मोक्ष का कारण कैसे कहा जाय ? नहीं कह सकते।

प्रश्न :– अज्ञानी के व्रत मोक्ष के कारण नहीं होते – यह बात तो ठीक है और जचती भी है, परन्तु ज्ञानी के व्रत तो मोक्ष के कारण होते हैं न ?

उत्तर :– नहीं भाई, ज्ञानी को मोक्ष का कारण तो उसका ज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणमन है, कहीं व्रतादि का शुभराग मोक्ष का कारण नहीं है। राग तो बन्ध का ही कारण है, राग के समय उस राग से भिन्न परिणमन करता हुआ जो शुद्ध ज्ञान (अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) है वही मोक्ष का कारण है – ऐसा जानना। इस सम्बन्ध में श्री कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं :–

व्रत नियम को धारे भले, तप शील को भी आचरे।
परमार्थ से जो बाह्य वह, निर्वाण प्राप्ति नहिं करे।।

अन्तर में जिसको शुद्धात्मा का ज्ञान नहीं अर्थात् जो अज्ञानरूप ही वर्तता है, ऐसा जीव व्रत-तप आदि शुभ कर्म करते हुए भी मोक्ष को नहीं पाता, इसलिए शुभ कर्म मोक्ष का कारण नहीं है। शुद्धात्मा के अनुभव से ज्ञानरूप हुआ ज्ञानी, व्रतादि शुभ कर्म न होने पर भी ज्ञान परिणमन से मोक्ष को पाता है, इसलिए ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। ज्ञान परिणमन में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों समा जाते हैं, किन्तु उसमें व्रतादि का शुभराग नहीं समाता, क्योंकि वह ज्ञान से भिन्न है। ऐसे ज्ञानमय मोक्षकारण को जो नहीं जानते वे अज्ञान से पुण्य को मोक्ष का कारण मानते हैं, अर्थात् वे राग का ही सेवन करते हैं, ज्ञान का सेवन नहीं करते। भाई ! राग का सेवन तो संसार का ही कारण है, उसे तू मोक्ष का साधन मानता है वही अज्ञान है, ऐसा साधन तो तूने अनन्त बार किया है फिर भी मोक्ष क्यों नहीं पाया ? मोक्ष का सच्चा साधन आत्मा का सम्यग्ज्ञान है – ऐसा समझकर उस ज्ञान का सेवन करो। ज्ञान चेतनारूप धर्म ही भूतार्थ धर्म है, वही कर्म से छूटने का कारण है। शुभ कर्मरूप कर्मचेतना तो कर्म-बन्ध और संसार भोग का कारण है, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। अरे भाई ! मोक्ष के सच्चे मार्ग को तो तू जान ! अपने सुख के सच्चे उपाय को तो पहिचान।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शास्त्र पठन करते हुए और पंच महाव्रत पालते हुए अज्ञानी जीव शुद्धात्मा के ज्ञान-श्रद्धान से शून्य है और ज्ञान-श्रद्धानरूप बीज के बिना चारित्ररूप वृक्ष कहाँ से उगेगा ? चारित्र का मूल तो शुद्धात्मा का ज्ञान-श्रद्धान ही है और वह अज्ञानी के है नहीं। अरे ! जहाँ ज्ञान का अनुभव नहीं और रागरूप परिणमन ही वर्तता है, वहाँ शास्त्र पठन अथवा व्रत-महाव्रत से भी जीव को क्या लाभ ? उसमें ज्ञानचेतनारूप आत्मा तो आया ही नहीं और आत्मा के ज्ञान-श्रद्धान अनुभव बिना सुख होगा ही कहाँ से ? भाई, तू ज्ञान की कीमत करके आत्मा को जान। राग से भिन्न पड़कर ज्ञान-चेतनारूप होकर आत्मा का स्वाद ले। राग का तो अनन्तकाल से तूने अनुभव किया है, अब राग से पार चैतन्य का स्वाद तो ले। एक बार तो इस चैतन्य का मधुर स्वाद चख ले। इसी से तुझे वीतराग-विज्ञान रूप सच्चा सुख मिलेगा; ऐसा कोई अपूर्व सुख होगा जो राग में कभी अनुभव में नहीं आया। अन्तर में राग से पार चैतन्य सुख का स्वाद कैसा है उसके अनुभव का पुनः पुनः अभ्यास करना चाहिए। आत्मा की सच्ची लगन से ऐसा अभ्यास करने पर अन्दर अवश्य अनुभव होगा और भव दुःख का नाश होगा।

जिस अज्ञानी ने अंग पढ़े उसके पंच महाव्रत आगमानुकूल थे, उसके माने हुए देव-शास्त्र-गुरु तीनों सच्चे थे, उसे कुदेव-कुगुरु कुमार्ग की श्रद्धा स्वप्न में भी नहीं मानता। कुदेवादिक को मानने वाले को तो अंग का ज्ञान होता ही नहीं। वह जैन मार्ग के अतिरिक्त अन्य मार्ग को स्वप्न में भी नहीं होती, वह जैन मार्ग के व्यवहार में आया, किन्तु अन्दर आत्मा की तरफ ज्ञान को झुकाकर आत्मा को नहीं जाना, अतः अज्ञानी ही रहा, परमार्थ से बाहर ही रहा अर्थात्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मोक्ष के मार्ग में नहीं आया। उसने शास्त्रों को तो पढ़ा परन्तु निजात्मा को नहीं जाना, इसलिए उसे लेश भी सुख नहीं मिला, अतः उसका शास्त्र-पठन भी वास्तव में निष्फल ही गया। शास्त्र-पठन का वास्तविक फल तो यह था कि ज्ञानमय शुद्धात्मा को जानकर आनन्द का वेदन हो – यह फल तो उसे प्राप्त हुआ नहीं। अरे! अपनी दृष्टि स्वयं ही न बदले तो शास्त्र भी क्या करे? अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा में है, उसकी सन्मुखता बिना जीव ने किंचित् भी सुख नहीं पाया अर्थात् मात्र दुःख ही पाया।

पुण्य करके भी दुःख ही पाया? हाँ, राग में तो दुःख ही है न। राग भले शुभ हो, परन्तु उस राग से सुख तो नहीं मिलता, राग तो दुःख ही है। राग से पार चैतन्य तत्व है, वह स्वयं सुख का सागर है, उसके ज्ञान से सुख मिलता है। ज्ञान का अर्थ है स्वसन्मुख होकर उसका अनुभव करना। शास्त्र पढ़-पढ़ कर भी जो स्वसन्मुख नहीं हुआ और शुद्धात्मा लक्षगत नहीं किया तो उस जीव ने क्या पढ़ा? शास्त्र तो बतलाना चाहते हैं उस ज्ञानमय आत्मा को तो लक्ष्य में लिया ही नहीं। अनन्त सुख का धाम आत्मा स्वयं है उसमें उतर कर उस सुख का एक अंश भी चखे तब तो संसार का अन्त ही आ जावे। राग से भिन्न पड़कर ज्ञान-चेतनारूप हो तभी चैतन्य सुख का स्वाद आवे। अनन्त सुखमय चैतन्य का अनुभव करने से सुख का अंश जिसने चखा वह पूर्ण सुख प्राप्त करेगा ही।

ऐसा सुख सम्यग्ज्ञान से ही होता है और उसे प्रकट करने से परिभ्रमण का दुःख मिट जाता है। एक क्षण भी चैतन्य का सुख चखे तो अनन्त काल संसार की थकान मिट जाय। अहा! जिस चैतन्य के सन्मुख होने पर ऐसा अपूर्व अतीन्द्रिय परम सुख अनुभव में आया –

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह अल्प सुख भी ऐसा अलौकिक है तो पूर्ण सुख की क्या बात ? चैतन्य का स्वभाव स्वयं अलौकिक सुख का सागर है – ऐसा धर्मी जानता है। अहा, यह अलौकिक चैतन्य तत्त्व, पूर्ण सुख का समुद्र, उसकी अलौकिक महिमा की बात क्या ! ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर स्वयं अपना ज्ञान करना वही परम सुख है। इसके बिना जीव चाहे जितना क्रियाकाण्ड करे परन्तु सुखी नहीं हो सकता।

आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्द स्वरूप है, उसके ज्ञान बिना राग में खड़े रहकर जीव अनन्त काल से जो कुछ भी आचरण करता आ रहा है उसमें वह दुःखी ही हुआ है। संसार परिभ्रमण के अनन्त अवतार में मनुष्य भव तो कभी-कभी ही मिलता है, ऐसा मनुष्य भव पाकर भी अज्ञान से जीव ने उसे गँवा दिया। जीव ने अनन्त बार मनुष्यपना पाया और उसमें अनेक भव में दिगम्बर मुनि होकर महाव्रत पाले, शास्त्र पठन किया, देव-गुरु-धर्म की व्यवहार श्रद्धा भी की, परन्तु इतना करने पर भी उसे आनन्द क्यों नहीं आया ? और उसका भव-भ्रमण क्यों नहीं मिटा ? तो कहते हैं कि सभी पराश्रित भावों से पार चैतन्य तत्व आत्मा स्वयं कौन है ? यह उसने स्व सन्मुख होकर कभी जाना नहीं, इसलिए आत्मज्ञान बिना लेश भी सुख प्राप्त नहीं हुआ और भव-भ्रमण का दुःख भी नहीं मिटा। वह ऊँचे स्वर्गों में भी गया परन्तु स्वर्ग में जाने से कहीं सुख नहीं मिल जाता। सुख नहीं हुआ अर्थात् धर्म नहीं हुआ धर्म होने पर तो आत्मा के सुख का वेदन होगा ही, जहाँ सुख नहीं वहाँ धर्म नहीं और आत्मा के ज्ञान बिना सुख नहीं।

आत्मा को जाना नहीं और आत्मा से बाहर रहकर, परभाव में – राग में रहकर, जीव ने अनन्त बार मनुष्य भव गँवाया। यदि चैतन्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभाव के सन्मुख हो तो महान सुख क्षण मात्र में हो जाय और कर्म टलकर संसार का किनारा दिखाई पड़ जाय। पुण्य से कभी संसार का अन्त नहीं आता और सुख का अंश भी नहीं मिलता सम्यग्ज्ञान से ही संसार का अन्त आकर अपूर्व अलौकिक सुख प्राप्त होता है।

विषय-कषायरूप पाप के अशुभ भावों में भव गँवावे, अथवा कुगुरु-कुदेव के सेवन में जीवन गँवावे, उसकी तो यहां बात ही नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि सच्चे वीतराग देव-गुरु को ही माने, अन्य को न माने, विषय-कषाय के पापभाव छोड़कर व्रत-शीलादि के शुभ भाव में लवलीन रहे और उसमें ही सन्तोष माने कि इसी से अब मोक्ष हो जायेगा, परन्तु यदि उन व्रतादि के शुभराग से पार ज्ञान-चेतना का अनुभव न करे तो वह जीव भी सुख नहीं प्राप्त कर सकता। वह स्वर्ग में जाता है, परन्तु इससे क्या ? सुख तो राग रहित चैतन्य परिणति में है, कहीं स्वर्ग के वैभव में सुख नहीं है।

यह किसकी बात है ? तेरी अपनी ही बात है। बापू! तू स्वयं ज्ञान चेतना स्वरूप है। ज्ञान चेतना स्वयं परमसुख में निमग्न है, ऐसी ज्ञान चेतना के अनुभव बिना तू अनन्त बार शुभ भाव कर चुका है। शुभ के साथ अज्ञान पड़ा है अर्थात् राग में सर्वस्व मान कर राग रहित सम्पूर्ण ज्ञान स्वभाव का तू अनादर कर रहा है। सम्यग्ज्ञान बिना राग में तो सुख कहाँ से होगा ? शुभराग में ऐसी शक्ति नहीं कि अज्ञान रूपी अन्धकार अथवा दुःख को दूर कर सके। ज्ञान वस्तु राग से भिन्न है, उस ज्ञान चेतना के प्रकाश से ही अज्ञानांधकार टलता है और सुख प्रकट होता है। निजानन्दी ज्ञान स्वरूप आत्मा की तरफ झुककर सम्यग्ज्ञान चेतना प्रकट किए बिना सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा स्वयं है। राग में किंचित् भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सुख नहीं है। राग में किंचित् भी सुख नहीं है। राग में से अथवा कहीं बाह्य में से सुख लेना चाहे तो "सुख की सत्ता आत्मा में है" – इसका अस्वीकार हो जाता है। अरे, जहाँ सुख है, जो स्वयं सुखस्वरूप है, उसका स्वीकार किए बिना सुख कहाँ से और कैसे होगा ?

प्रश्न :– शुभराग में सुख भले न हो परन्तु दुःख तो नहीं है ?

उत्तर :– अरे, भाई ! इसमें आकुलता रूपी दुःख ही है। जड़ में तो सुख-दुःख का अनुभव है नहीं, चैतन्य तत्व अपने ज्ञान स्वभाव से सुख का वेदन करता है और अज्ञान भाव से दुःख का वेदन करता है। भेद-ज्ञान सिद्ध सुख का कारण है और भेद-ज्ञान का अभाव अर्थात् अज्ञान वह संसार-दुःख का कारण है। जहाँ चैतन्य के ज्ञान की शान्ति का वेदन नहीं वहाँ कषाय है, भले अशुभ हो या शुभ हो, परन्तु जो कषाय है वह तो दुःख ही है। शुभ कषाय को शान्ति तो नहीं कह सकते। आत्मा के ज्ञान से क्षण मात्र में करोड़ों भव के कर्म छूट जाते हैं और सम्यग्ज्ञान बिना करोड़ों वर्ष के तप से भी सुख का अंश भी नहीं मिलता। देखो तो सही, ज्ञान की अपार महिमा ! अज्ञानी जीव को ज्ञान की महिमा की खबर नहीं है, उसे राग दिखाई पड़ता है, किन्तु राग से पार होकर अन्दर चैतन्यमय अश्र्व महिमावन्त ज्ञान उसे दिखाई नहीं पड़ता। अतः कहते हैं कि हे भाई ! मोक्ष का कारण तो सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान सहित का चारित्र है। सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान बिना तो आचरण थोथा है, उसमें लेश भी सुख नहीं है। इस प्रकार सम्यग्ज्ञान की महिमा जानकर उसे परम अमृतरूप जानकर उसका सेवन करो।

यह रत्नचिन्तामणि जैसी मनुष्य पर्याय पाकर तथा जिनवाणी का श्रवण करके, हे जीवो ! तुम इस दुर्लभ सम्यग्ज्ञान का अभ्यास

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करो और आत्मा को पहिचान लो – ऐसा अब अग्रिम छन्द में कहेंगे।

तत्त्व अभ्यास की प्रेरणा

तातैं जिनवर कथित, तत्व अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपौ लख लीजै।।
यह मानुष पर्याय सुकुल, सुनिवौ जिनवानी।
इह विधि गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधि समानी।। ६।।

सम्यग्ज्ञान ही सुख का कारण है – ऐसा जानकर, उस सम्यग्ज्ञान के लिए जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे हुए तत्त्व का अभ्यास करो और संशय-विभ्रम-विमोह छोड़कर आत्मा का स्वरूप पहिचान लो।

ऐसा मनुष्य अवतार, उत्तम कुल, जिनवाणी के श्रवण का सुयोग बारबार मिलना कठिन है। यदि सम्यग्ज्ञान बिना इस अवसर को गँवा दिया तो जिस प्रकार समुद्र में डूबा हुआ उत्तम मणि फिर से प्राप्ति करना कठिन है उसी प्रकार इस भव समुद्र में मनुष्य अवतार और जिनवाणी का श्रवण करने के लिए पुनः अवकाश मिलना अत्यन्त कठिन है।

वीतराग-विज्ञान अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इस जीव को मिथ्यात्वादि दुःखदाई भावों से रक्षा करने के लिए ढाल के समान हैं – उसका वर्णन इस छहढाला में है। उसमें से इस चौथी ढाल में सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के लिए उपदेश चल रहा है। अरे, जीव ! इन भयंकर भवदुःखों से यदि तू अपने आत्मा की रक्षा करना चाहता है तो इस सम्यग्ज्ञान का सेवन कर। "आपो लख लीजे" अर्थात् आत्मा का स्वरूप पहिचान कर सम्यग्ज्ञान प्रकट कर। आत्मा का ज्ञान ही जीव को सच्चे सुख का कारण है, इसके बिना अन्य किसी भी उपाय से किंचित् भी सुख मिलने वाला नहीं है। अतः हे जीव ! तू जिनदेव के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्वारा कहे गए जीवादि तत्त्वों का बराबर अभ्यास करके अपनी आत्मा को पहिचान लें।

जिनवर अरिहन्तदेव तीर्थंकर परमात्मा का प्रवाह अनादि से जगत में चलता आ रहा है। अनन्त तीर्थंकर हुए, अब भी मनुष्य क्षेत्र में सीमंधरादि बीस तीर्थंकर भगवन्त तथा लाखों अरिहन्त केवली भगवन्त विचर रहे हैं। यहाँ इस भरत क्षेत्र में भी ढाई हजार वर्ष पहले महावीर तीर्थंकर हुए। ऐसे जिन भगवन्तों ने जिन जीवादि तत्त्वों को जाना और उपदेश दिया, उन्हीं तत्त्वों का उपदेश कुन्दकुन्दचार्य आदि वीतरागी सन्तों की परम्परा से आज भी चल रहा है। अरे जीव ! ऐसा मनुष्य अवतार, ऐसा जैनकुल और ऐसा वीतरागी जिनोपदेश पाकर तू अब उसको समुद्र में फेंके गए चिन्तामणि के समान व्यर्थ मत गँवा। अब तो आत्मा को पहिचान ले। जिस प्रकार महाभाग्य से चिन्तामणि रत्न हाथ में आया हो तब उससे अपना कार्य साधने के बदले कोई मूर्ख उसे समुद्र में फेंक दे; उसी प्रकार उत्तम चिन्तामणि जैसा यह मनुष्य अवतार पाकर तू वैसी मूर्खता मत कर, क्योंकि पुनः पुनः ऐसा अवसर मिलना कठिन है। इसलिए इस सुयोग में वीतरागी जिनवाणी सुनकर, भगवान कथित तत्त्वों का सच्चा अभ्यास करके आत्मा को पहिचान ले। आत्मा को पहिचान कर सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान प्रकट करते ही तुझे चैतन्य का अमृत सुख मिलेगा और तेरे भवदुःख का अन्त आ जावेगा।

अरे, आजकल तो जैनकुल में जन्मे भी बहुत से लोग कुमार्ग में फँस रहे हैं, जिन भगवान के कहे हुए सत् का व्यवहार निर्णय भी नहीं करते; सत् तत्त्व बहुत कठिन पड़ गया है। ऐसा कठिन सत्य तुझे महाभाग्य से मिला है, अतः तू अपने आत्मा का हित साध ले।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के लिए अपने हाथ में चिन्तामणि रत्न आया है, तो उसको विषय-कषाय के समुद्र में मत फेंक। चिन्तामणि जैसी जिनवाणी के द्वारा आत्मचिन्तवन करके उसे पहिचान ले।

प्रत्येक वस्तु का अपना स्वतंत्र द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव होता है, किसी का किसी में मिलता नहीं है – इस प्रकार भिन्न-भिन्न पदार्थों का स्वाधीन परिपूर्ण स्वरूप जिनवर देव के मार्ग में ही है, उसको तू जान। द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप वस्तु कैसी है उसे तू पहिचान। रागादि अशुद्धता, सम्यक्त्वादि शुद्धता और शरीरादि में जड़ता, उन सबको एक दूसरे में मिलाए बिना जैसा है वैसा पहिचान, और उसमें से आत्मा का वास्तविक स्वरूप जान। अजीव से भिन्न और रागादि से भी रहित ऐसे शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा को पहिचान। आत्मा को बराबर पहिचान कर सन्देहादि दोषों से रहित सम्यग्ज्ञान प्रगट कर, उससे तुझे परम सुख प्राप्त होगा।

जीव-अजीव आदि अनन्त पदार्थों से स्वयं से सिद्ध ऐसा यह विश्व, उसमें प्रत्येक पदार्थ स्वभाव से ही अपने-अपने धर्मरूप है। भिन्न-भिन्न अनन्त जीव हैं, प्रत्येक जीव में अपने-अपने अनन्त गुण और पर्याय हैं, प्रत्येक वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रुवता स्वरूप है और संसारी जीव एक गति में से दूसरी गति में पुनर्भव धारण करता है, जब वह वीतरागभाव प्रगट करके मुक्त होता है तब भवरहित सिद्धपद में स्थिर हो जाता है और फिर कभी संसार में अवतार नहीं लेता, कभी राग-द्वेष नहीं करता, जगत का कर्ता-हर्ता नहीं बनता। इस प्रकार जिनवरदेव के शासन में कहा गया वस्तु स्वरूप जानना चाहिए, इसी में मनुष्य जन्म की सफलता है।

आत्मा में एक गुण होगा कि अनन्त गुण होंगे ? आत्मा स्वतंत्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होगा कि किसी ईश्वर ने बनाया होगा ? परभव होगा कि नहीं ? आत्मा नित्य होगा या इस देह जितना ही होगा ? इस शरीर जितने छोटे क्षेत्र में अनन्त गुण कैसे रहते होंगे ? एक-एक गुण में अनन्त शक्तियाँ किस प्रकार होंगी ? अनेकान्त किस प्रकार होगा ? आत्म पर्याय वाला होगा या पर्याय रहित होगा ? शुद्धोपयोग ही मोक्ष का कारण होगा या शुभ राग भी मोक्ष का कारण होगा ? भगवान जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप यथार्थ तत्त्व को जाने तो ज्ञान में इस प्रकार का कोई संदेह, विपरीतता या अध्यवसाय नहीं रहेगा, अर्थात् सम्यग्ज्ञान प्रकट होगा। सम्यग्ज्ञान होने पर धर्मी जीव को आत्मा के स्वरूप में कोई संदेह नहीं रहता, क्योंकि आत्मा स्वसंवेदन से स्वयं साक्षात् अनुभूत वस्तु है।

अहा ! जगत के बीच में निरालम्बी लोक, उसके असंख्य प्रदेश में अनन्तानन्त आत्मायें, उनमें प्रत्येक आत्मा भिन्न, स्वतंत्र, स्वाधीन और अपने अनन्त गुण-पर्यायों सहित है – ऐसा अलौकिक वस्तु स्वरूप भगवान सर्वज्ञ के मार्ग के अतिरिक्त अन्य कहीं नहीं है। आत्मा कभी शरीरादि रूप अथवा कर्म रूप नहीं हुआ, जड़ सदा जड़ में, चेतन सदा चेतन में, दोनों के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव रूप चतुष्टयमय त्रिकाल द्रव्य हैं। इस प्रकार स्व-पर वस्तु की भिन्नता के निर्णय बिना ज्ञान की विपरीतता नहीं मिटती, अर्थात् सम्यग्ज्ञान नहीं होता और जन्म-मरण का अन्त नहीं आता। आत्मा में संशय होगा तो सम्यग्ज्ञान नहीं होगा और आत्मा के स्वरूप का यथार्थ निर्णय होगा तो सम्यग्ज्ञान अवश्य होगा। सम्यग्ज्ञान नहीं करेगा तो मोक्ष कभी नहीं होगा, और सम्यग्ज्ञान करेगा तो मोक्ष होगा ही होगा, इसलिये "आपो लख लीजे" – ऐसा उपदेश दिया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान के कहे गये नव तत्त्वों को किस प्रकार पहिचानें उसका वर्णन द्वितीय और तृतीय ढाल में विस्तार से आ गया है, उसके अभ्यास से आत्मा के सच्चे स्वरूप को पहिचानना चाहिए। देखो ! भगवान के कहे हुए तत्त्व के अभ्यास का फल क्या ? कि "आपो लख लीजे" अन्तर्मुख होकर आत्मा का स्वरूप अनुभव में लेना। तत्त्व के अभ्यास का फल तो आत्मा का अनुभव करना है। मैं चैतन्यमूर्ति हूँ, शरीरादि अजीव से भिन्न और रागादि आस्रवों से जुदा हूँ, मेरा चैतन्य तत्त्व अन्य सब तत्त्वों से भिन्न है, मैं ही आनन्द मूर्ति हूँ – इस प्रकार ज्ञानादि अनन्त गुणों के चैतन्य पिण्ड को लक्ष्य में लेकर "यह मैं हूँ" – ऐसा अनुभव होने पर सम्यग्ज्ञान होता है। अहा ! ऐसे आत्मा के ज्ञान में अलौकिक सुख है। इसलिए कहते हैं कि "आपो लख लीजे"। आत्मा के ज्ञान बिना जैन तत्त्व का सच्चा ज्ञान नहीं होता। भगवान ने आत्मा का स्वरूप पर से भिन्न और राग से पार उपयोगमय बताया है, उसकी सन्मुखता ही धर्म का मूल स्तंभ है। भाई, तेरी महान चीज तेरे में पड़ी है, उस पर दृष्टि कर, आत्म-सन्मुखता बिना बाह्य दृष्टि से जीव चाहे जितना शुभ भाव करे, उससे स्वर्ग मिलेगा किन्तु आत्मा का सुख कदापि नहीं मिलेगा।

जीवादि नव तत्त्वों को बराबर पहिचानना चाहिए, उसके लिए सत्संग और जिनवाणी का अभ्यास कर। जिनवाणी क्या कहती है ? वह यह कहती है कि हे जीव ! अपने आत्मा के सन्मुख हो जा भूतार्थरूप अपने शुद्ध स्वभाव का आश्रय कर, यही सच्चा तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन है। अजीव को अपने से भिन्न वस्तु जाने तो अजीव की श्रद्धा की – ऐसा कहा जाय। पुण्य-पाप आस्रव-बंध को दुःख रूप जानकर उनका आश्रय छोड़े तो पुण्य-पाप और आस्रव-बंध तत्त्व की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्रद्धा हुई – ऐसा कहा जाय। इस प्रकार शुद्धात्मा की सन्मुखता से ही नवतत्त्व की सच्ची श्रद्धा होती है। तत्त्वार्थ श्रद्धान का कार्य तो यह है कि भेद-ज्ञान से शुद्धात्मा का आश्रय करके पर और विकार का आश्रय छोड़ना। आनन्द रस का समुद्र आत्मा इतना महान है – ऐसा जाने और फिर उसमें उपयोग न लगे – ऐसा कैसे बने ? अहा ! वीतराग कथित आत्मा अपनी ही वस्तु है, उसको न जाने तो इस अनन्त भव-समुद्र में यह मनुष्य भव कहाँ जाकर डूबेगा ? अनन्तकाल से आत्मा एक भव में स दूसरे भव में जाता है, आत्मा को पहिचान कर मोक्ष पावे तभी भवभ्रमण मिटेगा। फिर मोक्ष में सिद्ध भगवानपने अनन्त-अनन्त काल रहेगा। बापू ! ऐसा आर्य मनुष्यपना, श्रावक का उत्तम कुल और वीतरागी जिनवाणी का श्रवण तुझे महाभाग्य से मिला है, ऐसा सुयोग तो चिन्तामणि के मिलने जैसा है, उसे तू व्यर्थ मत गँवा।

६ वर्ष की छोटी उम्र में श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते हैं :–

बहु पुण्य–पुञ्ज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे भव चक्र का फेरा न एक कभी टला।।
सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते सुख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर भावमरण प्रवाह में चकचूर है।।

बापू ! वर्तमान में अनन्त काल के दुःख से छूटकर सुख की प्राप्ति करने का यह अवसर है, अतः तू सुख के कारण रूप सम्यग्ज्ञान को प्रकट करले। यहाँ "सुयोग" रूप में आत्महित में निमित्त रूप तीन बातें ली हैं। लाखों, करोड़ों रुपया मिले, बँगला मोटर मिले, सुन्दर शरीरादि मिले, उसको यहाँ सुयोग नहीं कहा, किन्तु आर्य मनुष्यपना, श्रावक का उत्तम कुल और वीतराग-वाणी का श्रवण मिला, उसको सुयोग कहा है। जो आत्मा की पहिचान में निमित्त रूप हो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसे योग को सुयोग कहा है। उसके लिए कहीं पैसा या शरीर का सुन्दरता आदि की आवश्यकता नहीं है। भले गरीब हो, कुरूप हो, परन्तु वीतराग-वाणी से, जैनधर्म के संस्कार से, आत्महित कर सकता है। देखो न, अमेरिका आदि देशों में और यहाँ भारत में भी अनेक जीवों के पास आज करोड़ों रुपया दिखाई पड़ता है, किन्तु सच्चे जैन धर्म का श्रवण, अर्थात् जिससे आत्मा का हित हो, वह मिलना अति दुर्लभ है। ऐसा अवसर तुझे मिला है तो करोड़ों अरबों रुपयों के योग की अपेक्षा यह सुयोग धन्य है – ऐसा समझ। ऐसा सुयोग पाकर अब तू संसार की झंझट में, लोगों को प्रसन्न करने में, मत रुक, किन्तु शीघ्र ही आत्मा को पहिचान कर अपना हित कर ले। अमेरिका आदि में बाह्य वैभव चाहे जितना हो परन्तु आत्मा के ज्ञान बिना उसमें लेश मात्र भी सुख नहीं मिलता। अध्यात्मविद्या जो भारत का वास्तविक वैभव है, वही सुख का कारण है। अतः उसका अभ्यास करके आत्मा को पहिचानो।

अहा ! जो वाणी गणधरदेव आदर से सुनते हैं, जिसे सुनने के लिए स्वर्ग के इन्द्र भी इस मनुष्यलोक में उतरते हैं, जिसे चक्रवर्ती भी अत्यन्त भक्ति से सुनते हैं, आत्मा का अद्भुत स्वरूप बताने वाली ऐसी जिनवाणी तुझे वर्तमान में यहाँ सुनने को मिली तो उसका चिन्तवन करके, वस्तु स्वरूप समझकर, चैतन्य स्वरूप आत्मा का सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कर ले। ऐसा महान सुयोग मिला है उसे आत्मज्ञान से सफल कर। यदि तत्त्व-दृष्टि नहीं की और जीवन अज्ञान में तथा विषयों में गँवा दिया तो हाथ में आया हुआ मनुष्यभव रूपी उत्तम रत्न खोकर तू पछताएगा। बापू ! धन-कुटुम्ब-शरीर आदि की दरकार छोड़कर जीवन में आत्मा की दरकार कर। आत्मा का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दर्शन-ज्ञान कैसे हो उसके प्रयत्न में लग।

जिसप्रकार कोई हरा वृक्ष जलकर राख बन जाए और उस राख को किसी नदी में फेंक दे अथवा हवा में चारों तरफ बिखेरकर उड़ा दे, बाद में वे ही सब रज कण पुनः एकत्रित होकर वैसा ही वृक्ष बनावें – ऐसा अनंत काल में भी होना जितना कठिन है, उसी प्रकार संसार में कल्पवृक्ष जैसा यह मनुष्यपना पाकर यदि आत्मा का भान नहीं किया और अज्ञान से विषयों में ही उसे गँवा दिया तो भव समुद्र में आत्मा ऐसा डूब जाऐगा कि फिर से अनंत काल में ऐसा मनुष्यपना मिलना कठिन हो जायेगा। त्रसपने का काल भी थोड़ा (दो हजार सागरोपम मात्र) है, जिसमें कीड़ी-मकोड़ी आदि असंज्ञी पर्यायें भी सम्मिलित हैं, उनमें मनुष्य अवतार तो अत्यल्प होते हैं। त्रस के उस मर्यादित काल में मनुष्य होकर या तो आत्मा को साधकर मोक्ष पा जाय, अन्यथा त्रस पर्याय का काल पूर्ण होने पर निगोदादि एकेन्द्रिय स्थावर पर्याय में चला जायगा। फिर वहाँ से अनन्तकाल में भी निकलना कठिन है। अतः हे जीव! तू शीघ्र चेत .... चेत .....चेत।

रे ! मनुष्य होकर भी सच्ची जिनवाणी सुनने को मिलना कितना कठिन है। जिनवाणी के नाम पर भी आजकल तो अनेकों जगह विपरीत उपदेश चल रहा है, पानी में आग लगने जैसा हो गया है, क्या किया जाय। ऐसे समय में भी तुझे ऐसी अमृत जैसी मीठी जिनवाणी मिली, वीतरागी आत्म स्वरूप को बताने वाली वाणी मिली, तो अब आलस्य छोड़कर आत्मा की पहिचान करके इस उत्तम योग को सफल कर ले। महावीर प्रभु के शासन को पाने का सच्चा लाभ ले ले।

अज्ञान दशा में जीव का अनन्त काल तो एकेन्द्रियपने में गया,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसमें से निकलकर कीड़ी आदि त्रस पर्याय पाना कठिन, फिर संज्ञीपना और मनुष्यपना पाना कठिन, पश्चात् भारत जैसा आर्यदेश मिलना कठिन, उसमें भी श्रावक कुल और जैनधर्म मिलना कठिन, फिर आत्मस्वरूप समझाने वाली जिनवाणी का श्रवण, समयसारादि परम अध्यात्म शास्त्रों का श्रवण मिलना और भी कठिन है। ऐसा दुर्लभ योग आज तुझे भाग्य से मिला है और आत्महित की बुद्धि भी जागृत हुई है तो अब ऐसे अवसर में तू मत चूक, आत्मा को पहिचान कर सम्यग्ज्ञान उत्पन्न कर ले, जिससे तेरे भव का अन्त आ जाय और तुझे परम सुख की प्राप्ति हो जाय।

भेद–विज्ञान की प्रेरणा

पिछले छन्द में दुर्लभ मनुष्यपना और जिनवाणी का श्रवण पाकर आत्मज्ञान करने को कहा था। अब कहते हैं कि जीव को धन, वैभवादि सुख के लिए कुछ काम नहीं आते, एक सम्यग्ज्ञान ही सुख का कारण है, और वह अपना स्वरूप है। इसलिए करोड़ों उपायों से स्व-पर का भेद-ज्ञान करके अन्तर में सम्यग्ज्ञान प्रकट करो।

धन समाज गज बाज, राज ताके काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै।।
तास ज्ञान को कारण, स्व–पर विवेक बखानो।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो।। ७।।

हे जीव ! तेरे हित के लिए धन, समाज, कुटुम्ब-परिवार, हाथी-घोड़ा अथवा राज्य आदि तो कुछ काम आने वाले नहीं, और वे स्थाई रहते भी नहीं हैं, तेरे हित का कारण तो सम्यग्ज्ञान है, वह ज्ञान आत्मा का अपना स्वरूप है, अर्थात् वह ज्ञान उत्पन्न होने के बाद अचल रहता है। स्व-पर के विवेकरूप भेद-ज्ञान को ऐसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्ज्ञान का कारण कहा है, शास्त्रों ने इस भेद-ज्ञान का बखान किया है, प्रशंसा की है, इसलिए हे भव्य जीवो ! तुम करोड़ों उपायों से भी इस भेद-ज्ञान को अन्तर में प्रकट करो, उसी से तुम्हारा हित अर्थात् मोक्ष होगा।

ज्ञान स्वरूप आत्मा क्या चीज है ? उसे पहिचानना चाहिए। शरीर अजीव है, पुण्य-पाप तो आस्रव हैं, उससे भिन्न चैतन्य स्वरूप आत्मा को पहिचानो। आत्मा आनन्दकंद है, उसे पहिचानने से ही मनुष्य अवतार की सफलता है, अतः करोड़ों उपाय करके भी अर्थात् चाहे जैसी प्रतिकूलता आवे उसे सहन करके भी स्व-पर के भेद-ज्ञान से आत्मा को पहिचानो। समयसार में तो ऐसा कहा कि तू मरकर भी चैतन्य को जानने का कौतूहली बन और शरीरादि से भिन्न आत्मा को अनुभव में ले। "मरकर भी" ऐसा कहकर उत्कृष्ट प्रयत्न की बात की है, अर्थात् मरण जैसी प्रतिकूलता आ पड़े तो भी उसकी चिन्ता किये बिना चैतन्य को पहिचानने का उत्साह जागृत कर।

अरे ! जो स्वयं अपनी ही आत्मा को न पहिचाना तो करोड़ों-अरबों रुपया हो या अच्छा पुत्र परिवार हो, उससे क्या लाभ ? समाज में मान-सम्मान हो, लोगों में प्रसिद्धि हो उससे आत्मा को क्या लाभ ? अरे, दूसरी चीज तो काम ही नहीं आती, किन्तु अपना शुभ भाव भी आत्मा के हित में काम नहीं आता। हित का कारण तो एक ही है कि राग पार आत्मा का सच्चा ज्ञान करना। वह ज्ञान कोई बाहर के उपाय से नहीं आता, वह तो आत्मा का ही स्वरूप है और आत्मा के साथ सदा मोक्ष में भी अविचलपने रहता है। राग और संयोग तो छूट जाता है, क्योंकि वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। ज्ञान आत्मा का स्वरूप है, इसलिए वह कभी छूटता नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्व-पर के भेद-ज्ञान का अभ्यास करने पर सम्यग्ज्ञान होता है, इसलिए हे भाई ! करोड़ों उपाय करके भी ऐसे ज्ञान को अन्तर में प्रकट करो। भले ही बाहर में चारों ओर से हजारों प्रतिकूलतायें हों, धन न हो, कुटुम्ब न हो, शरीर स्वस्थ न हो, समाज में सम्मान न हो, तिरस्कार होता हो तो भी सच्चे ज्ञान से आत्मा का हित हो सकता है। अतः धन-समाज, सन्मान आदि सबका लक्ष्य छोड़कर, उन सबसे भिन्न अपने ज्ञान स्वरूप आत्मा को पहिचानने का सर्वप्रकार से उद्यम करो। करोड़ों उपाय करके भी आत्मा को जानो, अर्थात् करोड़ों प्रतिकूलताओं के मध्य भी साहस न छोड़ते हुए निरन्तर आत्मा को जानने के प्रयत्न में ही लगे रहो। बाहर की कोई प्रतिकूलता आत्मा को जानने में रुकावट नहीं डाल सकती तथा बाहर में धनादि की अनुकूलता आत्मा को जानने में सहायता भी नहीं कर सकती। बाहर की प्रतिकूलता या अनुकूलता, इन दोनों से आत्मा भिन्न है। ऐसी भिन्नता के अभ्यास से स्व-पर का भेद-ज्ञान करने से सम्यग्ज्ञान होता है। वह ज्ञान ही तुझे शरण रूप है, दूसरे भव में तथा मोक्ष में भी वह तेरे साथ ही रहेगा, क्योंकि वह आत्मा के स्वभाव की चीज है।

धन, शरीर, राज्य, कुटुम्ब आदि आत्मा के स्वभाव की चीज नहीं हैं, राग भी जहाँ आत्मा के सवरूप की चीज नहीं वहाँ अन्य की क्या बात करें ? आत्मा का स्वरूप तो सम्यग्ज्ञान है, सम्यग्ज्ञान कहते ही अनन्त गुण भी साथ में समझना चाहिए। भाई, तेरा चेतन स्वभाव तुझे सुख का कारण है, जड़ लक्ष्मी के ढेर कहीं तुझे सुख के कारण नहीं हैं, उनके लक्ष से तू ममता करेगा तो वे तुझे पाप के निमित्त होंगे। कदाचित् दानादि में राग की मंदता करेगा तो वह राग भी कहीं आत्मा को शरण देने वाला नहीं है। मैं चैतन्य स्वरूप आत्मा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राग से भिन्न हूँ, ऐसा जानकर आत्मा में उपयोग जोड़ने पर जिस अपूर्व अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होगा उस आनन्द को देने की शक्ति जगत के किसी भी पदार्थ में नहीं है। धन का ढेर आत्मा को हित का कारण नहीं होता, तथैव निर्धनता आत्मा के हित में बाधक भी नहीं है।

अरे ! यह शरीर ही आत्मा का नहीं, तो अन्य की बात क्या ? ज्ञानी तो शरीर को एक वस्त्र समान अपने से भिन्न जानते हैं। शरीर रूपी वस्त्र फटे-जले-बदले उससे कहीं आत्मा फटता-जलता या बदलता नहीं है। चारों ओर से शरीर की पीड़ा के बीच भी जिसमें विश्राम लेने पर परमशान्ति का वेदन होता है – ऐसा मैं आत्मा हूँ। जब बाहर में शरीर जलता हो तब भी अन्दर में आत्मा आनन्द समुद्र में परम शान्ति का वेदन करता है, क्योंकि शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं।

देखो न, इस शत्रुंजय पर्वत पर पाण्डव कैसे ध्यान में खड़े हैं। बाहर में शरीर सुलगता है, परन्तु वह तो अन्दर आत्मा की शान्ति में ठहरे हैं, उसमें ऐसे तल्लीन हैं कि शरीर के दाहक के प्रति क्रोध का विकल्प भी नहीं आता। अरे, साथ के दूसरे भाईयों को क्या हो रहा है यह देखने को भी वृत्ति नहीं उठती, आत्मा की परम शान्ति में लीन होकर केवलज्ञान प्रकट करके मोक्ष पाते हैं। वाह ! देखो आत्मा की शक्ति ! एक ही काल में शरीर जलता है और आत्मा स्थिर रहता है – इसप्रकार दोनों तत्त्वों की क्रिया अत्यन्त भिन्न-भिन्न है।

देह और आत्मा का भेद ज्ञान करके सम्यग्ज्ञान प्रकट करना चाहिए। ऐसा सम्यग्ज्ञान ही सच्चा विवेक है। देह और आत्मा एक हैं अथवा शुभराग जीव को ज्ञान का साधन है – ऐसी बुद्धि तो महान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अविवेक है, उसमें आत्मा का अहित है। भले बाहर में अनेक भाँति का चहुँमुखी ज्ञान हो, परन्तु जिसे देह से भिन्न और राग से भिन्न आत्मा का भान नहीं, वह जीव परमार्थ में अविवेकी है, उसके आत्मा का हित नहीं हो सकता। तथा किसी को भले बाहर का विशेष ज्ञान हो परन्तु अन्तर में स्व-पर की भिन्नता के विवेक से जिसने आत्मा का सम्यग्ज्ञान प्राप्त किया है, वह महान विवेकी है। सम्यग्ज्ञान ही सच्चा विवेक है और उसी में आत्मा का हित है।

भले बड़ा राजपाट हो परन्तु यदि आत्मा की संभाल न करें, अभक्ष्य भक्षण करें, तो ऐसे पापी जीव नरक में जाते हैं, – वहाँ राजपाट का वैभव उसका क्या करेगा ? हजारों देव जिसकी सेवा करते थे ऐसे सुभौम चक्रवर्ती भी आत्मा को भूलकर विषय – कषाय में तीव्र लीनता के कारण नरक में गए, वहाँ उनको कोई सहायरूप नहीं हुआ, तो अन्य जीव की क्या बात ? आत्मा के अतिरिक्त अन्य सब तो अशरण है – ऐसा जानकर, उस राजपाट को छोड़कर अन्तर में चैतन्य के शरण में जाकर अनेक जीवों ने आत्महित साधा है। भरत महाराज जैसे चक्रवर्ती छहखण्ड के राज्य में किंचित् भी सुख नहीं मानते थे, उससे भिन्न आत्मा के सुख को जानते थे, इसलिए राजपाट छोड़कर आत्मा में लीन होकर मुक्त हो गए। इसप्रकार ज्ञानी को बाहर में राजपाट हो, तो भी मैं इन सबसे भिन्न आत्मा हूँ और मेरे आत्मा में मेरे अनन्त गुणों का साम्राज्य है – ऐसा भेद ज्ञान उसको वर्तता है। ज्ञानी का ज्ञान राजपाट को आत्मा से भिन्न जानकर उससे विरक्त ही वर्तता है। राग और राज्य दोनों से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान आत्मा के स्वभाव में एकत्वरूप हुआ है, वह अतीन्द्रिय शान्ति सहित है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा ! इस सम्यग्ज्ञान की महिमा अपूर्व है, वही सदाकाल जीव को शरणरूप है, अन्य कुछ भी जीव को आत्महित के लिए काम नहीं आता। मरणकाल में हजारों नौकर-चाकर व स्त्री-पुत्रादि उपस्थित हों, स्वर्ग में बड़े देव के पास अन्य हजारों देव सेवा में खड़े हों, परन्तु वे किसकी सेवा करते हैं ? शरीर की सेवा करते हैं, परन्तु अन्दर में आत्मा तो अज्ञान के कारण मिथ्याभाव से दुःखी ही हो रहा है, उसमें दूसरा कोई क्या करे ? क्या नौकर-चाकर, स्त्री-पुत्र, धन का पुंज अथवा देवगण – कोई भी इस आत्मा को अज्ञान के दुःख से छुड़ाने में समर्थ हैं ? नहीं, इसीलिए हे जीव ! विचार तो कर कि जब यह वस्तुएँ आत्मा की शान्ति के लिए किसी काम की नहीं तो उनके अलावा अपनी वस्तु क्या है कि जो अपनी शान्ति के लिए चाहे जिस समय भी काम आवे। ऐसा तो सम्यग्ज्ञान ही है, वह स्वयं शान्तिरूप है अर्थात् जब देखो तब सदा शान्ति देता है, वह अपनी ही चीज है। हे भाई ! ऐसे सम्यग्ज्ञान को लक्ष में लेकर उसका तू उद्यम कर। थोड़ा-सा उद्यम करके अटक मत जा, बल्कि उसे प्राप्त करके ही मान।

अहो, मेरा तो एक मात्र ज्ञान ही है, ज्ञान वह मैं हूँ ज्ञान के अतिरिक्त मेरा कुछ भी नहीं है। ज्ञान उसे कहा जाय कि जिसमें राग का अंश भी न हो। राग के किसी अंश को ज्ञान अपने में मिलाता नहीं, एक तरफ ज्ञान वह आत्मा, दूसरी तरफ राग और राग का फल, वह सब ज्ञान से भिन्न, आत्मा से भिन्न है – ऐसे दो भाग करके भेद-ज्ञान करना सम्यग्ज्ञान का उपाय है।

शुभाशुभ राग, पुण्य–पाप या उसका फल – इनमें से कोई भी आत्मरूप नहीं है, इसलिए ये आत्मा के हित में कार्यकारी नहीं हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इनसे पार अपना ज्ञान स्वरूप आत्मा ही अपना निजरूप है, उसमें शुभाशुभ विकल्प नहीं है। ऐसा निजरूप ज्ञान ही आत्मा को सर्वत्र शान्ति दायक है। सम्यग्ज्ञान आत्मा की अपनी चीज है, वह भगवान आत्मा के स्वभाव में से हुआ है इसलिए आत्मा के साथ अचल रहता है। उसके साथ सम्यक् श्रद्धा, शान्ति, सुख, वीतरागता आदि अनन्त स्वभाव हैं, परन्तु राग या पुण्य ज्ञान में समाविष्ट नहीं हैं, वे तो ज्ञान से भिन्न हैं, परभाव हैं, और दूसरे क्षण में आत्मा से भिन्न पड़ जाते हैं। आत्मा के साथ वे अचल रहने वाले नहीं हैं, क्योंकि वे आत्मा का निजरूप नहीं हैं।

अरे, चैतन्य वस्तु अन्दर अनन्तगुण सहित है, वही मेरा निज रूप है, मेरे चैतन्य रूप में शुभ विकल्प का एक अंश भी नहीं समा सकता, पुण्य भी आत्मा के हित में काम नहीं आता – इस प्रकार हे जीव ! तू शुभाशुभ राग से भी रहित ऐसे चैतन्यमय निज रूप को पहिचान। स्व-पर के विवेक में चैतन्य तत्व राग से भी भिन्न जानने में आया है। अहो ! ऐसा स्व-पर का भेद-ज्ञान प्रशंसनीय है, सर्व सन्तों ने भेद-ज्ञान की प्रशंसा की है। कैसा भेदज्ञान ? कि जिस उपयोग में राग का एक अंश भी न मिले, उपयोग राग से सर्वथा भिन्न होकर अन्तर्मुख होकर उपयोग में ही तन्मयपने ठहर जाए। ऐसा भेद-ज्ञान अत्यन्त प्रशंसनीय है। इसके बिना मात्र शुभराग से आत्मा का हित बिल्कुल नहीं होता। उसमें सन्तुष्ट होने से तो तू मनुष्य भव हार जाएगा। श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा है :–

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये।
परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धि ? कुछ नहीं मानिये।।
संसार का बढ़ना अरे ! नर देह की यह हार है।
नहीं एक क्षण तुझको अरे ! इसका विवेक विचार है।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाई ! लक्ष्मी आदि की ममता के आगे यदि तू आत्मा का हित साधना भूल जायगा तो ऐसें मनुष्य अवतार को तू हार जायगा इस लक्ष्मी आदि की वृद्धि में कहीं आत्मा का सुख नहीं है। अरे ! पुण्य की वृद्धि होना भी संसार ही है, इसमें भी आत्मा का सुख नहीं है। बापू ! इस अवसर में तो संसार छेदकर आत्मा के सुख मिलने का उपाय कर, सम्यग्ज्ञान द्वारा आत्मा को पहिचानने का शीघ्र उद्यम कर। आत्मा का भेद-ज्ञान रूपी जो सुपुत्र है वही आत्मा का कल्याण कर्त्ता है, बाहर का पुत्र कहीं आत्मा को शरणरूप नहीं होता। संयोग तो चलायमान हैं, वे चले जावेंगे, प्रातः का संयोग सायंकाल नहीं दिखता, प्रातःकाल में जिसका राज्याभिषेक होता हुआ देखा हो, सायंकाल में उसी की चिता जलती दिखाई देती है। यह संयोग कहीं आत्मा की चीज नहीं है। ज्ञान ही आत्मा का निज स्वरूप होने से आत्मा के साथ अचल रहता है।

शुभ राग भी चलायमान है, वह कहीं अचल नहीं – स्थिर नहीं – शरण नहीं – आत्मा का निज रूप नहीं। राग से भिन्न आत्मा के ध्यान से परिणमित ज्ञान ही अचल है, वह आत्मा का निज रूप होने से इस लोक में और परलोक में भी ज्यों का त्यों टिका रहेगा। आत्मा ही स्वयं अपने स्वभाव से वैसे ज्ञान रूप हुआ है, वह उससे कैसे छूटे ? वह ज्ञान सदा आत्मा के साथ अभेद रहता हुआ आत्मा को परम सुख देगा। अतः हे जीव ! तू सम्यग्ज्ञान प्रकट कर। सर्वप्रकार के उद्यम से बारम्बार भेदज्ञान के अभ्यास से अन्तर्मुख होकर तू ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव कर।

अहो ! यह भेद-ज्ञान निरन्तर भाने योग्य है, क्योंकि सिद्धि का कारण यह भेद-ज्ञान ही है। जो कोई जीव मोक्ष पाते हैं वे भेद-ज्ञान से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही पाते हैं। मेरा आत्मा तो ज्ञान स्वरूप है, ज्ञान स्वरूप से भिन्न जो कुछ भी शुभाशुभ राग अथवा धन-कुटुम्ब इत्यादि संयोग हैं, वह मैं नहीं हूँ – ऐसे भेद-ज्ञान से आत्मा का अनुभव करके सभी जीव सिद्ध हुए हैं, और ऐसे भेद-ज्ञान बिना कोई जीव सिद्ध नहीं हो सकता। अतः भेद-ज्ञान ही मुक्ति का उपाय है।

पं. बनारसीदास ने लिखा है :–

भेद-ज्ञान संवर जिन पायो, ते चेतन शिव रूप गहायो।
भेद-ज्ञान जिनके घट नाहीं, ते जड़ जीव बँधे जगमाँही।।

ऐसा भेद-ज्ञान आत्मा से अभिन्न है और मोक्ष का कारण है, इसलिए मुमुक्षुओं को भेद-ज्ञान की भावना सदा कर्तव्य है। आत्मा के ज्ञान बिना बाहर के जानपने को भेद-ज्ञान नहीं कहते, वह तो अज्ञान अथवा कुज्ञान है। अरे ! जो अपने आत्मा को पर से भिन्न न करे उसे सच्चा ज्ञान कौन कहे ? पर से भिन्न अपने आत्मा का ज्ञान, यही सच्चा भेद-ज्ञान है, निज स्वरूप में एकता करके रागादि से भिन्न पड़ना ही सुज्ञान है। ऐसे भेद-ज्ञानवंत सुज्ञानी जीव ही मुक्तिपुरी के पथिक हैं। जिनको ऐसा भेद-ज्ञान नहीं, देह में और राग में एकत्व बुद्धि से जिनका ज्ञान अज्ञानरूप परिणमित हो रहा है, ऐसे जीव शुभ-अशुभ कर्म को बाँधकर संसार में ही भटकते हैं। इसलिए कहते हैं कि हे भाई ! हे आत्महित के अभिलाषी ! करोड़ो उपायों से भी तू ऐसा भेद-ज्ञान कर। अपने हित का यह उत्तम कार्य सर्वप्रथम करने योग्य है।

आत्मा में उतरकर जिसने सच्चा भेद-ज्ञान प्रकट किया अर्थात् जिसने स्वानुभव से आत्मा का निर्णय किया, संयोगों के फिरने पर भी उसके निर्णय में फेरफार नहीं होता। सच्चा निर्णय ऐसा नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता कि आत्मा धर्म-स्थान में अथवा ज्ञानी के पास हो तब तो बना रहे ओर वहाँ से हटने पर छूट जाय। सच्चा निर्णय तो ऐसा होता है कि आत्मा जहाँ भी जाय वहाँ साथ ही रहे, किसी भी संयोग में नहीं छूटे, क्योंकि वह निर्णय संयोग के आधार से नहीं हुआ है किन्तु आत्मा के स्वभाव में से आया है। ज्ञानी को जो भेद-ज्ञान हुआ है वह सदा सर्व प्रसंगों में रहेगा, उसने आत्मा को आत्मा जाना है, वह कभी नहीं छूटेगा, और पर को पररूप जाना है उसमें कभी आत्मभाव नहीं होगा। कहा भी है कि :–

निजरूप को छोड़े नहीं, परभाव को भी नहिं ग्रहे।
मैं जानता अरु देखता सब, ज्ञानी यह चिन्तन करे।।

आहा ! जिसे ऐसा भेद-ज्ञान हुआ वह तो आत्मा रूप हो गया अब वह कैसे छूटे ? वह तो आत्मा का निज स्वरूप है। हे भाई तू पुण्य-पाप रहित अपने चैतन्य स्वरूप का लक्ष कर। तुझे तेरा अचल स्वरूप कोई परम अद्भुत दिखाई पड़ेगा, और तेरे आत्मा में से तुझे मुक्ति सुख का स्वाद आवेगा – ऐसे भेद-ज्ञान वाला जीव प्रशंसनीय है। धन बहुत हो अथवा शास्त्र ज्ञान विशेष हो गया हो, इससे कहीं जीव प्रशंसनीय नहीं है, किन्तु जिसे अतीन्द्रिय ज्ञान से चैतन्य तत्व की अनुभूति हुई हो वह जीव तीन लोक में प्रशंसनीय है। उसकी प्रशंसा सभी करते हैं, श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव भी उसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं :–

वह धन्य है कृतकृत्य है, शुरवीर अरु पंडित है।
सम्यक्त्व सिद्धिकर अहो स्वप्न में भी निर्दोष है।।

आत्मा के अनुभवरूप भेद-ज्ञान का साधन भी आत्मा से भिन्न नहीं है, आत्मा से अभिन्न ऐसा ज्ञान ही चैतन्य स्वभाव में घुसकर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा को परभावों से रहित ग्रहण कर लेता है, और परमसुख का अनुभव करता है। आत्मा चैतन्य वस्तु है, असंख्य प्रदेशों का पिण्ड है, ज्ञानसुख आदि अनन्त स्वभाव उसमें भरे हैं। जैसे चन्दन में सर्वत्र गन्ध है, वेसे ही चैतन्य में सर्वत्र ज्ञान और आनन्द है, मुझमें देह नहीं, राग नहीं, मैं अपने अनन्त भावों से भरी एक चैतन्य वस्तु हूँ – इस प्रकार स्वसन्मुख होकर जो सम्यग्ज्ञान हुआ वह अन्दर के चैतन्य समुद्र में से उछला है चैतन्य के अनन्त गुणों के रस को साथ लेकर प्रकट हुआ है।

भेद-ज्ञान आनन्द सहित प्रकट होता है। जैसे शक्कर की मिठास ख्याल में आती है, वैसे ही चैतन्य के आनन्द की अलौकिक अतीन्द्रिय मिठास का स्वाद भेद-ज्ञानी को आता है। शुभ विकल्प में आकुलता है, उसके स्वाद से भिन्न परम निराकुल शान्तरस आत्मा में है, उसके लिए समस्त संसार के बाह्य भावों का रस छूटकर अन्दर आत्मा का रस आना चाहिए, अत्यन्त प्रेम से उसमें परिणाम लगाना चाहिए। आत्मा अरूपी होने पर भी सत् वस्तु है, उसका साक्षात् स्वाद धर्मी को स्वानुभव में आता है। अरूपी होने के कारण अनुभव में न आता हो – ऐसा नहीं है, आत्मा ज्ञान से अनुभव में आने योग्य है, परन्तु उसके लिए अन्दर में विशेष अभ्यास करना चाहिए।

"करोड़ों उपायों से भी सम्यग्ज्ञान कर" – ऐसा कहा, परन्तु "करोड़ों उपायों से भी तू शुभ राग कर" – ऐसा नहीं कहा, क्योंकि सुख का कारण राग है ही नहीं, सम्यग्ज्ञान ही सुख का कारण है। अतः विकल्प से भिन्न करके आत्मा का अभ्यास करना योग्य है। सम्यग्दर्शन के बाद भी जो व्रतादि के विकल्प आवें उनसे भी ज्ञान की भिन्नता का अभ्यास करना। भाई ! अपने हित के लिए तू दुनिया

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की दरकार छोड़ और सर्व उपाय से आत्म ज्ञान का उद्यम कर। भले करोड़ों बाधायें बाहर में आवें, निन्दा हो, रोग हो, निर्धनता हो, तथापि तू अन्तर में आत्मा के अनुभव का उद्यम कर। मरकर के भी अर्थात् यह मरण जैसी प्रतिकूलता आ पड़े तो भी तू आत्मा में उतरकर सम्यग्दर्शन कर।

यह अन्तर की अपूर्व वीतरागी क्रिया है। धर्म में यह मूल चीज है, इसके बिना शुभ का कोई मूल्य नहीं। जगत को शरीर और राग की क्रिया दिखाई पड़ती है, किन्तु धर्मी के अन्तर में होने वाली चैतन्य की श्रद्धा-ज्ञान की वीतरागी क्रिया दिखाई नहीं पड़ती, उसे पहिचान ले तो निहाल हो जाय। यहाँ करोड़ों उपाय से ज्ञान करने को कहा है, सो कहीं भिन्न-भिन्न करोड़ों उपाय नहीं हैं, उपाय तो एक ही है, परन्तु करोड़ों प्रकार की प्रतिकूलताओं के बीच में भी अपने आत्मा को पहिचान कर उसका अनुभव करना, भेद-ज्ञान करना – यही एक मात्र कर्त्तव्य है।

जिसके अन्तर में सच्ची ज्ञान कला जगी उस जीव को संसार के प्रति सहज वैराग्य हो जाता है, विषय कषायों में उसे स्वप्न में भी सुख या मिठास नहीं लगती। वह भले गृहस्थाश्रम में हो, पुण्य-पाप के भाव होते हों, तथापि ज्ञान बल से आत्मा को पुण्य पाप से भिन्न ज्ञान रूप अनुभव करता है। पर के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है उसकी ज्ञान परिणति पर से और राग से अत्यन्त निर्लेप रहती है। भगवान आत्मा के आनन्द अमृत के पास विषयकषाय उसे विष समान लगते हैं। भरतचक्रवर्ती, रामचन्द्रजी आदि सम्यग्दृष्टि थे, उनके अंतरंग में ऐसी ही दशा थी। इन्द्र जैसे जिनके मित्र, छियानवे हजार जिनकी रानियाँ, छह खण्ड का जिसके पास राज्य, तीर्थंकर जिनके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पिता, और नवनिधान जिनके घर में, तथापि वे भरत चक्रवर्ती जानते थे कि हमारा कुछ भी नहीं है, ये सब हमसे भिन्न हैं, उनमें हम कदापि नहीं हैं। भेद-विज्ञान की कला से वे अन्दर में चैतन्य के आनन्द का स्वाद लेते थे। ऐसा ज्ञान, वह आत्मा का स्वरूप है, एक बार प्रकट करने के बाद वह भेद-ज्ञान की धारा आगे बढ़कर अक्षय केवलज्ञान प्राप्त करती है।

इसलिए कहते हैं कि जगत में जिस किसी जीव को आत्मा का सुख चाहिए वह जीव अन्तर में करोड़ों उपाय करके स्व-पर भेद-ज्ञान करके सम्यग्ज्ञान प्रकट करे। करोड़ों उपाय से अर्थात् अन्दर के महान अपूर्व उद्यम से सम्यग्ज्ञान प्रकट करना चाहिए।

तीनों काल में ऐसा सम्यग्ज्ञान ही मोक्ष का उपाय है, उसी से विषयों की इच्छा रूप भयंकर दावानल बुझती है और अतीन्द्रिय शान्ति प्राप्त होती है – यह बात अगले छन्द में कहेंगे।

मोक्ष का एकमात्र उपाय भेद-ज्ञान

सम्यग्ज्ञान ही जीव को परम सुख का कारण है, यही जन्म-मरण का रोग मिटाने वाला अमृत है, उसके बिना संसार में सुख का कोई कारण नहीं है। इसलिए करोड़ों उपायों से भी ऐसा सम्यग्ज्ञान प्रकट करो – इस प्रकार सम्यग्ज्ञान प्रकट करने की प्रेरणा करके अब सम्यग्ज्ञान की विशेष महिमा समझाते हुए कहते हैं :–

जे पूरब शिव गये, जाहिं अरू आगे जैहैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं।।
विषय चाह दव दाह, जगत जन अरनि दझावै।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनाघान बुझावै।। ८।।

जो अनन्त जीव पहले मोक्ष गए हैं, अब जा रहे हैं और भविष्य में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जावेंगे, वह सब सम्यग्ज्ञान की ही महिमा है – ऐसा मुनिनाथ कहते हैं। जिस प्रकार आग अरनि के जंगल को जला देती है, उसी प्रकार विषयों की चाहना रूपी भयंकर दावानल संसारी जीवों को जला रही है, उसको यह ज्ञानरूपी मेघ धारा ही बुझाकर शान्त करती है, ज्ञान के अलावा उसका उपाय अन्य कोई नहीं है।

आत्मा के सच्चे ज्ञान से चैतन्य सुख का अनुभव जहाँ तक न हो वहाँ तक शुभ या अशुभ पर-विषयों में सुख बुद्धि रहती है, अर्थात् विषयों की चाहना की ज्वाला में जीव जला ही करता है, दुःखी होता ही रहता है। जिसने स्व-पर की भिन्नता जानकर चैतन्य समुद्र की अगाध शान्ति अपने में देखी, उसने विषयों से भिन्न सुख अपने में देखा, उसी समय उसे अपूर्व चैतन्यरस की धारा से विषयों की चाह छूट जाती है। सम्यग्ज्ञान होने पर आत्मा के अतिरिक्त अन्य सभी में से सुखबुद्धि हट जाती है। कविवर बनारसीदासजी ने नाटक समयसार में लिखा है :–

ज्ञानकला जिनके घट जागी, ते जग माँहि सहज वैरागी ।
ज्ञानी मगन विषयसुख माँही, यह विपरीत संभवै नाहीं ।।

तीनोंकाल भेद-ज्ञान से चैतन्य सुख का अनुभव कर-करके ही जीव मोक्ष में जाते हैं। पर से भिन्न चैतन्य तत्त्व की लगन लगाकर जिसने सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रकट की उसी जीव ने मोक्ष सुख पाया, वे ही पाते हैं और पावेंगे। विदेह क्षेत्र में या भरत में, चौथेकाल में या पंचमकाल में, जिस किसी जीव ने मोक्ष पाया, जो पाता है और पावेगा वह ज्ञान के सेवन से ही समझना। समयसार की टीका में मुनिनाथ श्री अमृतचन्द्र स्वामी कहते हैं :–

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धाः ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन।।

सम्यग्दर्शन कहो, भेद-ज्ञान कहो, ज्ञान की आराधना कहो, वही मोक्ष का उपाय है। मुनियों के नाथ ऐसा कहते हैं कि ज्ञान की आराधना से ही मोक्ष प्राप्त होता है। आत्मा अपने ज्ञान की अनुभूति रूप से परिणमे, वही मोक्ष का हेतु है। इसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों समा जाते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये तीनों ज्ञानमय हैं, राग रहित हैं, उनमें राग का कोई अंश नहीं समाता राग से खिसककर चैतन्यभाव में बसना ही मोक्ष का पंथ है।

सम्पूर्ण मोक्षमार्ग ज्ञानमय़ है। ज्ञान की श्रद्धा, ज्ञान का ज्ञान, और ज्ञान का ही आचरण, इस प्रकार ज्ञान की अनुभूति में मोक्षमार्ग समाविष्ट है। ज्ञान के अनुभव से भिन्न कोई मोक्ष का कारण नहीं है।

अहो ! ज्ञान की महिमा तो देखो। ज्ञान अर्थात् सम्पूर्ण आत्मा उसको पहिचानने पर सम्यग्ज्ञान हुआ और मोक्षमार्ग खुला, मुनियों ने उसको मोक्षमार्ग में स्वीकार किया। मुनियों के नाथ ऐसे अरहंत भगवन्तों ने तथा गणधरादि महान मुनियों ने भेद-ज्ञान को ही मोक्ष का कारण जानकर उसकी प्रशंसा की है। ऐसे मोक्षमार्ग को पहिचान कर जो भेद-ज्ञान प्रकट करे उसी ने अरहन्तों की और मुनियों की आज्ञा स्वीकार की है। जो इसके विरुद्ध अन्य रीति से मोक्षमार्ग माने, शरीर की क्रिया को अथवा शुभराग को मोक्ष का कारण माने, उसने वीतराग अरहन्तों की आज्ञा नहीं मानी।

बापू ! मोक्षमार्ग में हम शुभ राग की प्रशंसा नहीं करते, हम तो वीतरागी ज्ञान की ही प्रशंसा करते हैं। चौथे गुणस्थान में जो सम्यग्ज्ञान है वह भी राग से भिन्न होने के कारण वीतरागी ही है, ऐसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्ज्ञान की महिमा तो जाने नहीं और बाहर में शुभ राग की महिमा करके उसमें एकाकार रहे तो उस जीव ने भगवान अरहन्त के मार्ग को नहीं जाना, मुनियों को नहीं पहिचाना और वह मुक्ति मार्ग से भी परिचित नहीं हुआ, भाई ! मुक्ति का मार्ग तो अन्दर चैतन्य के स्वभाव में से आता है, राग में से नहीं आता।

आत्मा के सच्चे ज्ञान बिना राग की मिठास नहीं छूटती और विषयों की चाह रूपी आग नहीं बुझती जहाँ चैतन्य की शान्ति रूप मेघ जल नहीं, वहाँ विषयों में जलते हुए जीवों की आग कहाँ से बुझेगी ? बापू आत्मा को भूलकर तू संसार में राग की भट्टी में जल रहा है। आगे कहेंगे - यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइए।

शुभ या अशुभ राग तो आग है, उसमें तू सदा जल रहा है, इसलिए ज्ञानरूपी अमृत का सिंचन करके उस आग को शान्त कर, अन्य किसी उपाय से वह आग नहीं बुझ सकती। ज्ञान से अन्तर में उतरकर चैतन्य की शान्ति के समुद्र में डुबकी मारे तो बाह्य विषयों की चाह मिट जायेगी और तुझे परम शान्ति का वेदन होगा चैतन्य स्वरूपी आत्मा महा शान्ति का सागर है, उसके शान्त रस के सिंचन से विषयों की आग बुझ जायेगी और चैतन्य की परम शान्ति अनुभव में आयेगी।

यहाँ आत्मा के सम्यग्ज्ञान की महिमा बतलाकर उसकी आराधना करने को कहा है। कौन कहते हैं ? मुनियों के नाथ कहते है, अर्थात् जिनेन्द्रदेव और गणधरदेव इस सम्यग्ज्ञान की महिमा कहते हैं। हे भव्य जीवो ! भेद-ज्ञान से ही कल्याण सधता है, इसलिए तुम करोड़ों उपायों से भी आत्मा को जानकर सम्यग्ज्ञान प्रकट करो।

छह मास आठ समय में ६०८ जीव अनादि काल से मोक्ष जा रहे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं और सदा ही जाते रहेंगे। उन सबने क्या करके मोक्ष पाया ? कि आत्मा के ज्ञान से ही मोक्ष पाया और भविष्य में भी इसी प्रकार मोक्ष पावेंगे। श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा है :–

''एक होय त्रणकाल में परमारथ का पंथ''

सम्यग्ज्ञान की कोई अपार महिमा है, क्योंकि वह जीव को मोक्ष प्राप्त करवाता है। राग में ऐसी शक्ति नहीं कि जीव को मोक्ष प्राप्त करावे। अनन्त बार मुनिव्रत पालने का शुभ राग किया, किन्तु उससे मुक्ति तो नहीं मिली। मुक्ति का उपाय शुभ-अशुभ दोनों से रहित, आत्मा के अनुभवरूप ज्ञान ही है। इस ज्ञान की महिमा अचिन्त्य है। चैतन्य स्वभाव का अपार सामर्थ्य है, विभाव उससे विपरीत है, और पर-द्रव्य उससे पृथक है – इस प्रकार विवेक करके स्व-पर को भिन्न जानना, इसी प्रकार विभावों से चैतन्य स्वभाव की भिन्नता जानना, और चैतन्य स्वभाव के महान सामर्थ्य को जानकर उसके सन्मुख होना। इस उपाय के द्वारा सम्यग्ज्ञान करने से जीव को मोक्ष प्राप्त होता है। मुनिनाथ कहते हैं कि अरे भैया ! अनन्त सिद्ध भगवन्तों ने जिस पंथ से सिद्धि प्राप्त की, उन्हीं भगवन्तों के पंथ में तुझे आना हो तो तू भेद-ज्ञान का अभ्यास कर, क्योंकि सभी भगवन्तों ने ऐसे भेद-ज्ञान से ही मुक्ति पाई है। सीमन्धरादि भगवन्त भी ऐसे ही भेद-ज्ञान से वर्तमान में मुक्त हो रहे हैं, और वैसे ही मार्ग का उपदेश दे रहे हैं।

सभी तीर्थंकर भगवन्तों ने एक ही प्रकार से मोक्षमार्ग की उपासना की है और एक ही प्रकार का उपदेश दिया है, क्योंकि मोक्ष के लिए दूसरे मार्ग का अभाव है।

अरे ! आत्मा की महिमा जिसके ज्ञान में न आवे और राग की महिमा आवे, वह जीव वीतरागी मोक्षमार्ग को कैसे साध सकता है ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा के असीम चैतन्य स्वभाव के सामने रागादि विभावों की कोई महिमा नहीं, वे तो चैतन्य स्वभाव से विपरीत हैं, चैतन्य भाव में राग भाव की तो नास्ति है। स्वभाव का निर्णय किये बिना सम्यक् ज्ञान नहीं हो सकता, सम्यग्ज्ञान बिना मोक्षमार्ग नहीं होता और विषय-कषायरूप अग्नि नहीं बुझती। इस प्रकार सम्यग्ज्ञान मोक्ष का कारण है। सम्यग्ज्ञान को मोक्ष का कारण कहने पर उसके साथ सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र भी आ जाता है – ऐसा समझना चाहिए।

स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य पशु भी ऐसे आत्मा का अनुभव करके मोक्षमार्गी होकर आज भी विचरण कर रहे हैं। हम पुण्य-पाप से पार चैतन्य स्वभावी हैं, यह शरीर हमारा नहीं, मात्र शान्त चैतन्य रस ही हम हैं – इस प्रकार स्वभाव रस का वेदन उन पशुओं को वर्तता है। हे भव्य ! ऐसा मनुष्य अवतार पाकर तू भी मोक्ष के लिए आत्मा का सम्यग्ज्ञान कर। यह तेरे से हो सकता है। पशु पर्याय में जीवों ने जो कार्य किया वह मनुष्य पर्याय में तुझसे क्यों नहीं हो सकता ? क्या आत्मा पशु या मनुष्य है ? आत्मा तो सभी चैतन्य स्वरूपी भगवान जैसे हैं। जो कार्य भगवान ने किया वह क्या तुझसे नहीं हो सकता ? क्यों नहीं हो सकता, अवश्य हो सकता है, अतः उत्साहपूर्वक वह कार्य कर।

मैं ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा हूँ, रागादि विकारी भाव चैतन्य से भिन्न हैं, शरीरादि जड़ अत्यन्त भिन्न हैं – ऐसा जिसको भान नहीं, और मैं मनुष्य हूँ – इत्यादि प्रकार से जो अपने को शरीररूप – जड़रूप मानता है, ऐसे जड़ बुद्धि वाले को मोक्षमार्ग का ज्ञान कहाँ से होगा ? वह तो कर्म से बँधता है। जिस समय राग होता है उस समय उससे भिन्न चैतन्यवस्तु को ही ज्ञानी निजरूप से अनुभव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करता है, इसलिए उसी को राग के अभावरूप संवर है और उसी को मोक्षमार्ग है।

अरे भाई ! पुण्य और पाप दोनों चैतन्य से भिन्न हैं, अतः पुण्य-पाप के फल में हर्ष-विषाद मंत करो – ऐसा अगले छन्द में कहेंगे। पुण्य के फल में हर्ष करके प्रफुल्लित मत हो जाओ, और पाप के फल में विषाद करके मुरझा मत जाओ। चैतन्य को तो पुण्य-पाप दोनों से भिन्न जानकर समभाव रूप रहो। मुनिवर कहते हैं कि पुण्य-पाप मुक्ति का उपाय नहीं है, पुण्य-पाप से भिन्न ऐसा सम्यग्ज्ञान ही मुक्ति का उपाय है, उसे करोड़ों उपाय करके अन्तर में प्रकट करो।

सम्यग्ज्ञान समान महिमावन्त वस्तु जगत में अन्य है ही नहीं। "ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण।" जीव को ज्ञान जैसा सुख दायक जगत में अन्य कोई नहीं है। अरे ! तेरा ज्ञान परम सुख की प्राप्ति कराने वाला और दुःख-दावानल को बुझाने वाला है, उसकी परम महिमा लाकर, तू आत्मा में एकाग्रता करके वह ज्ञान प्रकट कर, ज्ञान को राग में एकाग्र मत कर। अन्तर में ज्ञान और राग की भिन्नता का भावभासन करके ज्ञान का स्वाद ले। भिन्नता का भाव भासन हुए बिना अर्थात् ज्ञान का स्वाद आये बिना अकेला शास्त्र पठन आदि बाह्य प्रयत्न किस काम का ? मैं चैतन्य तत्व हूँ, और राग से मेरा तत्व भिन्न जाति का है – ऐसा अन्तर में वेदन करे तब शास्त्र के भावों का सच्चा भासन होता है, और सम्यग्ज्ञान होता है।

ऐसे सम्यग्ज्ञान होने पर आत्मा में चैतन्य के शान्त रस की ऐसी मेघ वर्षा होगी कि अनादि के विषय-कषाय की भयंकर आग क्षण मात्र में बुझ जायेगी। ज्ञान होते ही कषायों से आत्मा भिन्न पड़ गया और चैतन्य के परम शान्त रस में मग्न हो गया। पश्चात्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो अल्प राग रह गया वह तो ज्ञान से भिन्न पने ही रहा है – एक पने नहीं रहा। कषाय के किसी अंश को धर्मी जीव अपने ज्ञान में नहीं मिलाता। ऐसा अपूर्व ज्ञान परम महिमा वंत है – ऐसा मुनिनाथ भगवान ने कहा है।

जैसे शीतल बर्फ और उष्ण अग्नि, इन दोनों का स्पर्श भिन्न-भिन्न जाति का है, वैसे ही शान्त रस रूप ज्ञान और आकुलतारूप राग, इन दोनों का स्वाद अत्यन्त भिन्न जाति का है और उस ज्ञान के द्वारा पहिचाना जाता है। राग से भिन्न जो शुभाशुभ इन्द्रिय विषय (स्त्री आदि अशुभ और समवशरण आदि शुभ) हैं, उनमें मेरे सुख का अंश भी नहीं है, उनमें परम सुख मानना मिथ्यात्व है। जहाँ सुख धरा है ऐसे स्व-विषय को भूलकर, पर विषय में सुख बुद्धि के कारण मिथ्यादृष्टि जीव विषय-कषाय की भयंकर आग में निरंतर जल रहा है, दुःखी हो रहा है। हे जीव ! अपने को दुःख से बचाने के लिए तू शीघ्र ही विषयों से भिन्न अपने चैतन्य अमृत के समुद्र को देख । तेरा सगा भाई या बहिन अग्नि में जलती हो तो उसे बचाने के लिए सभी काम एक तरफ छोड़कर कितनी शीघ्रता करता है ? तो यहाँ सगे से सगा ऐसा अपना आत्मा भयंकर भव दुःख की अग्नि में जल रहा है। हे जीव ! उसे बचाने के लिए तू अत्यन्त शीघ्रता कर और सम्यग्ज्ञान कर।

सम्यग्ज्ञान होने पर शान्त रस के वेदन से तेरा ज्ञान विषयों से विरक्त हो जावेगा। बाहर के विषयों में, शरीर इन्द्रियादि में, कहीं स्वप्न में भी मेरे आनन्द की गंध भी नहीं है और मेरे आत्मा में कोई अचिन्त्य विषयातीत सुख है। आनन्द का अगाध सागर मेरे में भरा है – इसप्रकार सम्यग्ज्ञान से स्वपर का भेद जानने पर आत्मा सब

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विषयों से विरक्त हो जाता है, और आत्मा में ही सुख बुद्धि होने से उसमें ज्ञान एकाग्र हो जाता है। फिर भला उस ज्ञान में अशान्ति कैसे रहे ? इसप्रकार सम्यग्ज्ञान ही संसार के भयंकर दावानल से बचाने का एक मात्र उपाय है। इसलिए ऐसे सम्यग्ज्ञान की मुनिवरों ने भी बहुत प्रशंसा की है। इसलिए सुख के अर्थ तू अवश्य उसका सेवन कर।

जो जीव शरीर के स्पर्श में मिष्ट रस में, सुगन्ध में, रूप में, शब्दादि किन्हीं भी बाहरी विषयों में, राग में, पुण्य में अथवा पुण्य के फल में किंचित मात्र भी सुख मानता है, वह जीव अपने को विषयाग्नि में जलाता है। अरे ! दुख की आग में कूद कर भी यह अज्ञानी अपने को सुखी मानता है। इच्छा और विषय रहित मेरी चैतन्य वस्तु स्वयं ही सुख स्वरूप है – ऐसा भान करके सम्यग्ज्ञान रूपी मेघ धारा से धर्मी जीव विषय–चाह की भयंकर अग्नि को बुझा देता है। आत्मा के सम्यग्ज्ञान बिना, जीव द्रव्य लिंगी साधु होकर भी राग की रुचि के कारण विषयेच्छिा की अग्नि में ही जलता रहता है, उसे बाहर में भले ही विषयों की सामग्री का संयोग न हो , तथापि वह जीव विषयों से छूटा है – ऐसा ज्ञानी तो नहीं कहते क्यों कि उसे विषय सामग्री के कारण भूत शुभराग के वेदन में तो मिठास पड़ी है, उस शुभ राग के फल में तो बाह्य विषय सामग्री ही मिलेगी, उसके फल में चैतन्य सुख कदापि नहीं मिलेगा ।

इसप्रकार अज्ञानी के हृदय में विषय-दाह सुलगती है, जबकि ज्ञानी चौथे गुणस्थानवर्ती अव्रती हो तो भी सम्यग्ज्ञान की धारा से उसने विषय-चाह रूपी दावानल को बुझा दिया है। राग में या उसके फल में उसे किंचित भी मिठास नहीं है, इसलिए बाह्य में राजपाट की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सामग्री के बीच में बैठे होने पर भी अन्तर में उस जीव का ज्ञान वास्तव में विषयों से विरक्त ही है।

अहा! देखो तो सही सम्यग्ज्ञान की महिमा! सम्यग्ज्ञान होने पर चैतन्य में शीतल शान्ति के फव्वारे उछलते हैं और उनके द्वारा विषय कषाय की अग्नि बुझ जाती है। सम्यग्ज्ञान बिना अन्य किसी उपाय से जीव के विषय-कषाय मिटते नहीं है। इसलिए हे जीव! तू शीघ्र ही सम्यग्ज्ञान का सेवन कर – ऐसा संतों का उपदेश है।

अरे भगवान! तुझे संसार के अन्य कामों का तो अवसर मिलता है; किन्तु आत्मा के हित के लिए समय ही नहीं मिलता। इससे समझना चाहिए कि तुझे आत्मा का हित प्रिय नहीं है। तुझे जितना पर का रस है उतना आत्मा का नहीं है। यदि वास्तव में तुझे आत्मा का रस हो तो अन्य हजारों का काम छोडकर भी आत्मा के ज्ञान के लिए उद्यम करे। दूसरे काम का रस छोड़कर आत्मा की पहिचान के लिए करोड़ों उद्यम करके भी तू सम्यग्ज्ञान कर। भाई, इस समय तुझे उत्तम योग मिला है, ऐसा सुयोग फिर मिलना कठिन है, अतः तू इस अवसर में 'आपो लख लीजे' अर्थात् आत्मा को अवश्य ही पहिचान ले उसमें आलस्य मत कर क्यों कि 'यह नर भव फिर मिलन कठिन है जो सम्यक् नहीं होवे'। ऐसा तीसरी ढाल में कह चुके हैं।

आत्मा के अज्ञान से चतुर्गति में भ्रमण करते हुए जीव ने सबसे अधिक भव तो तिर्यंच गति में बिताये हैं, तदुपरान्त स्वर्ग–नरक और मनुष्य के भी अनन्त अवतार किये हैं। उनमें मनुष्य की अपेक्षा नरक के अवतार असंख्य गुणे तथा नरक की अपेक्षा स्वर्ग के अवतार असंख्य गुणे किये हैं। असंख्य अवतार स्वर्ग और नरक के करे तब मनुष्य का एक अवतार मिले – ऐसी मनुष्य अवतार की दुर्लभता है। ऐसे दुर्लभ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मनुष्य अवतार में भी जैन धर्म का वीतरागी उपदेश सुनने को मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। ऐसा मनुष्य अवतार और वीतरागी जैन धर्म का उपदेश तुझे आज महाभाग्य से मिला है, तो अब तू शीघ्र जाग, चेतकर सावधान हो, और आत्मा की पहिचान करके सम्यग्ज्ञान प्रगट करके अपने भवदुःख का अन्त कर।

ज्ञानी की चेतना परिणति रोगादि से और विषयों से सहज विरक्त है। चैतन्यसुख में परिणति मग्न हुई वह अब राग में अथवा बाह्य विषयों में मग्न कैसे होगी ? अज्ञानी को शुभराग के समय राग से भिन्न चैतन्यसुख की तो खबर नहीं है, अर्थात् राग में ही उसका ज्ञान लीन वर्तता है। ज्ञानी को कदाचित् अशुभ राग हो फिर भी ज्ञान में उस राग की पकड़ नहीं है, उस समय उसका ज्ञान राग से अत्यन्त भिन्न ही वर्तता है। राग को तो वह उपसर्ग जैसा मानता है, उसमें किंचित् भी सुख नहीं मानता – इसप्रकार ज्ञानी और अज्ञानी की परिणति में महान अन्तर है। इच्छा और संयोग तो दोनों के दिखाई पड़ते हैं किन्तु पकड़ में अन्तर है।

जैसे बिल्ली जिस मुँह में चूहे को पकड़ती है उसी मुँह में अपने बच्चे को भी पकड़ती है, परन्तु चूहे को तो मारने के लिए पकड़ती है और बच्चे को जिलाने के लिए पकड़ती है – इसप्रकार पकड़-पकड़ में फेर है; उसीप्रकार ज्ञानी और अज्ञानी के संयोग संयोग में फेर है। संयोग ज्ञानी-अज्ञानी दोनों को होता है, परन्तु ज्ञानी को तो वह परपने होता है स्वपने नहीं, और अज्ञानी को उसमें स्वपना है, अपनापन है। राग भी ज्ञानी और अज्ञानी दोनों को होता है, वहाँ ज्ञानी उस राग को दुखदायक मानकर उसका नाश करना चाहता है, जबकि अज्ञानी उस राग को सुखदायक मानकर उसकी रक्षा करना चाहता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसतरह दोनों की दृष्टि में महान अन्तर है।

प्रश्न :– राग में दुःख लगता है तो ज्ञानी उससे दूर क्यों नहीं हो जाता ?

उत्तर :– अरे भाई ! उसकी चेतना दुःख से दूर ही है अर्थात् छूटी हुई है, वह कहीं राग में लीन नहीं है। संयोग और राग दोनों से पार चैतन्य को ही वह चेतना वेदती है, उसमें ही तन्मय वर्तती है। रागादि परभावों को तो वह उपसर्ग जैसा समझकर उससे दूर (छूटी ही) रहती है। ज्ञान चेतना तो राग से भिन्न ही है। ऐसे ज्ञान की अपार महिमा है, उसके भान बिना दूसरे में आनन्द मानकर जीव भटकता है। इसलिए कहते हैं कि हे भाई! दूसरी बात छोड़ और करोड़ों उपाय करके भी तू सम्यग्ज्ञान प्रकट कर। स्व–पर की भिन्नता पहिचानकर तू सम्यग्ज्ञान कर, शास्त्र पढ़कर भी सम्यग्ज्ञान कर । ऐसा ज्ञान जिसने किया उस जीव ने संवर पाया अर्थात् सुख पाया, उसके जन्म मरण के अन्त का मार्ग प्रारम्भ हुआ, वह दुःख दावानल से छूटकर चैतन्य की परम शान्ति में आया।

भगवान आत्मा तो शान्ति का सागर है। जैसे बर्फ के पर्वत पर ठण्ड लगती है, वैसे ही कषायमय शान्ति की शिलारूपी निज आत्मा में प्रवेश करने पर शीतल-शान्ति का वेदन होता है और कषायाग्नि बुझती है। सम्यग्ज्ञान बिना तो सारा संसार कषाय की भट्टी में जल रहा है। शुभाशुभ राग में ही जीवन व्यतीत हो जाय और राग रहित ज्ञान न करे तो आत्मा का कल्याण किंचित भी नहीं होगा। भाई, दुनिया को राजी रखने के लिए तू अपना जीवन खपा देता है, परन्तु दुनियाँ तेरा साथ नहीं देती, राग या पुण्य भी तुझे शान्ति नहीं देता और वह स्थायी भी नहीं रहता। राग और संयोग तो सबके सब क्षण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में पलट जावेंगे, वे कहीं तेरी स्वकीय वस्तु नहीं हैं। स्वकीय वस्तु तो ज्ञान है और वही तेरा स्थायी साथीदार है।

अरे! यह तेरे हित साधने का अपूर्व अवसर आया है, इस अवसर में ज्ञान को विकार से भिन्न कर ले, यदि ऐसा नहीं करेगा तो तुझे मोक्ष का अवसर भी कहाँ से आवेगा? सुलगते हुए सूखे वन की तरह राग की चाह में सुलगते हुए संसार से छूटने के लिए अपने चैतन्य गगन में से तू सम्यग्ज्ञान के शान्त चैतन्य जल की मेघ धारा बरसा कर अपने को दाह विहीन कर। जिसे आत्मा के अनुभव से अन्तर में शान्त चैतन्य रस की धारा फूटी वह धर्मी कहता है कि :–

अब मेरे समकित सावन आयो।
बीति कुरीति मिथ्यामति ग्रीषम पावस सहज सुहायो।
अनुभव दामिनि दमकन लागी, सरति घटा घन छायो।।
साधक भाव – अंकुर उठे बहु, जित तित हरष छवायो।।

हमारे आत्मा में सम्यक्त्वरूपी श्रावण मास आते ही मोह की ग्रीष्म ऋतु की अकुलाहट शान्त हो गई है और शान्त रस की घनघोर धारा असंख्य प्रदेशों में सर्वत्र बरस रही है, मोह की धूल अब उड़ती नहीं है, स्वानुभवरूपी बिजली चमकने लगी है और सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र रूप साधक दशा का नवीन आनन्दमय अंकुर फूटा है। तथा जहाँ तहाँ स्वानुभव रूपी आनन्द छा गया है।

इसप्रकार धर्मी को सम्यग्ज्ञान की मेघधारा बरसती है और परमानन्द होता है। जिसके अन्दर ऐसी सम्यक् ज्ञानधारा नहीं बरसती वह अज्ञानी मोह की आकुलता में जलता है, उसको तो दुष्काल है। ज्ञान की मेघवृष्टि बिना उसको शान्ति कहाँ से मिलेगी? इसलिए हे जीव! तू सम्यग्ज्ञान प्रकट कर। जिससे तेरी विषय चाह की जलन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शान्त होगी और साधक दशा प्रारम्भ हो जाएगी। अल्पकाल में ही तू मोक्षरूप साध्य दशा को अवश्य प्रगट करेगा।

आत्मा की समझ में आवे और समझने पर शान्ति हो – ऐसी यह बात है। एक ओर वीतरागी शान्तरस का सागर और दूसरी ओर संसार का रागरूपी दावानल – इन दोनों को भिन्न जानने वाला सम्यग्ज्ञान राग के दावानल को बुझा देता है और आत्मा को शान्ति में ठहरा देता है। जहाँ ऐसा सम्यग्ज्ञान हुआ वहाँ ज्ञानी को राग का आनन्द उड़ गया, अब उसको ज्ञान की अतिन्द्रिय शान्ति में ही आनन्द आता है। ऐसी शान्ति के वेदन बिना आत्मा की कषायें कभी शान्त नहीं होती, भले त्यागी होकर व्रत-तप तापता हो या शास्त्रों को रटता हो परन्तु यह तो सब तोते जैसा ज्ञान है।

प्रश्न :– तोते जैसे ज्ञान का क्या अर्थ है ?

उत्तर :– एक तोता था उसके स्वामी ने उसे बोलना सिखाया कि बिल्ली आवे तो उड जाना, बिल्ली आवे तो उड़ जाना । एक बार वास्तव में बिल्ली आ गई और तोता उडा ही नहीं और यही रटता रहा कि बिल्ली आवे तो उड़ जाना, और फिर बिल्ली ने तोते को मुंह में पकड लिया तो भी बिल्ली के मुंह में पडा हुआ भी वह तोता यही रटता है कि बिल्ली आवे तो उड जाना, परन्तु यह रटना किस काम का ? इस घोखन पट्टी से कहीं अपनी रक्षा नहीं होती। इसीप्रकार अन्दर में चैतन्य तत्व क्या है, उसके भान बिना 'शास्त्र में ऐसा कहा है – राग को दुख दायक कहा है' – ऐसे तोते की तरह रटा करे या अन्दर में ऐसा विकल्प किया करे, किन्तु वास्तव में विकल्प से पार होकर अन्तर के चैतन्य तत्त्व में परिणाम जोडे नहीं तो शान्ति कहां से होगी ? बिल्ली के मुंह की तरह वह मिथ्यात्व के मुंह में ही पडा रहकर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रटता है कि 'विकल्प से भिन्न पड़ना – ज्ञानरूप होना'; किन्तु सचमुच तो भिन्न होता नहीं ज्ञानरूप होता नहीं तो मात्र शास्त्र-घोटन से कहीं शान्ति का वेदन नहीं हो सकता, अन्तरंग में वैसा भावरूप परिणमन होना चाहिए।

जिसकी चेतना राग से भिन्न पड गई है और जिसे सम्यग्ज्ञानरूप परिणमन हुआ है उसको – मैं राग से भिन्न हूँ – ऐसा रटना नहीं पडता, ज्ञान को स्थिर रखने के लिए विकल्प नहीं करना पडता। जैसे किसी तोते को 'बिल्ली आवे तो उड जाना' ऐसा बोलना न आवे, किन्तु बिल्ली का प्रसंग बनने पर स्वयं दूर उड जाए तो उसकी रक्षा हो जावेगी। उसीप्रकार किसी ज्ञानी जीव को शास्त्र ज्ञान भले ही सूक्ष्म न हो, किन्तु राग और ज्ञान की भिन्नता जानकर जिसकी परिणति चैतन्यभावरूप से परिणम गई है उसका ज्ञान तो प्रत्येक प्रसंग में विकल्प से भिन्न पने ही चैतन्यमय वर्तता है, अतः जन्म-मरण से उसकी रक्षा होती है।

अहा! भेदज्ञान होने पर धर्मी निःशंक होता है कि अब मैं मोक्षमार्गी हो गया, अब मेरा भव भ्रमण का अन्त आ गया। जैसा पूर्ण सुख सिद्ध भगवन्तों को है उसका आंशिक सुख मुझे भी हो गया है। अरे, राग मे मेरा चैतन्य धर्म कैसा ? और सुख कैसा ? राग तो अन्धा है, और चैतन्य जाग्रत है, दोनों अत्यन्त भिन्न हैं। शुभ राग में धर्म या सुख मानने वाले को चैतन्य स्वरूप आत्मा का भान नहीं है, वह राग की आग से आत्मा को भिन्न नहीं कर सकता, वह तो विषयों की दाह में ही जलता है। जिसमें सुख लगे उससे भिन्न कैसे पड़े ? इसलिए कहते हैं कि हे भव्य! प्रथम तू ज्ञान और पर का अत्यन्त भेद ज्ञान करके सम्यग्ज्ञान कर। पर को वास्तव में भिन्न माने तो उसमें सुख

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बुद्धि रहे ही नहीं। चैतन्य सुख को जाने तो दुख दायक राग को सुख का कारण माने ही नहीं। ज्ञानरूपी मूसलाधार वर्षा जीव की कषायों को बुझा देती है। ज्ञान में राग की रुचि नहीं रहती। ज्ञानजल से विषय कषायों की रुचि रूपी आग बुझ जाती है और चैतन्य की परम शान्ति का प्रवाह बहने लगता है। अज्ञान में कषायाग्नि की ज्वाला थी, सम्यग्ज्ञान में से उपशमरस का ऐसा झरना निकला कि कषायाग्नि शान्त हो गई। ऐसे सम्यग्ज्ञान की परम महिमा सभी सन्तों ने गाई है। इसलिए हे जीवो ! परम उद्यम से ऐसा सम्यग्ज्ञान करो।

ज्ञान परिणमन में मोक्षमार्ग समाया है। समयसार में कहा है कि ज्ञान का सम्यक्त्व वह मोक्ष के कारणरूप स्वभाव वाला है, ज्ञान का ज्ञान, वह मोक्ष के कारणरूप स्वभाव वाला है, ज्ञान का चारित्र भी मोक्ष के कारणरूप स्वभाव वाला है। इसप्रकार राग से भिन्न ज्ञान के परिणमन में मोक्ष मार्ग समा जाता है। ज्ञान उसी को कहा कि जो मोक्ष का कारण हो, जो मोक्ष का कारण न हो उसे ज्ञानी ज्ञान नहीं कहते। इसीप्रकार चारित्र भी उसे कहते हैं जो मोक्ष का हेतु हो, जो मोक्ष का हेतु न हो उसको (शुभराग रूप आचरण को) वास्तव में चारित्र नहीं कहते हैं। क्योंकि वह कहीं ज्ञान का चारित्र नहीं है, वह तो राग का चारित्र है।

अहो, जिसमें मोक्षमार्ग समावे, ऐसे ज्ञान को तो अज्ञानी पहिचानता नहीं, और शुभराग को मोक्षमार्गरूप से सेवन करता है वह अज्ञान से संसार में ही भटकता है। भले स्वर्ग में जावे, परन्तु वह विषयों की आग में ही सुलगता है, स्वर्ग के विषयों में कहीं सुख है नहीं, उनमें भी दुःख ही है। सुख तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में है, उसमें राग नहीं, विषय नहीं। सम्यग्दर्शन वह राग का नहीं ज्ञान का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही है, सम्यक्चारित्र वह राग का नहीं, ज्ञानका ही है। ज्ञान परिणमन में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों समा जाते हैं, किन्तु उसमें राग नहीं समाता, और राग में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं रहते। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों राग रहित ही हैं। ऐसे ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा बिना, उसके ज्ञान बिना, उसके चारित्र बिना मोक्षमार्ग आवेगा कहाँ से ? क्या शुभराग में से या पुण्य में से मोक्षमार्ग प्रकट होगा ? नहीं। मोक्षमार्ग में इनका कोई मूल्य ही नहीं।

जो कर्त्ता होकर राग को करते हैं वे ज्ञान को नहीं करते अर्थात् राग से भिन्न ज्ञानपने वे नहीं परिणमते, और जो ज्ञाता होकर ज्ञान को करते हैं वे राग के कर्त्ता नहीं होते, उससे भिन्न ही रहते हैं। ज्ञानभाव में रागभाव का कर्तृत्व कैसे होगा ? नहीं होगा। इसलिए बनारसीदास जी ने कहा है :–

करै करम सो ही करतारा, जो जानै सो जाननहारा ।
करता सो जानै नहिं कोई, जानै सो करता नहीं होई।।

एक ज्ञानधारा और दूसरी कर्मधारा – इनमें परस्पर कर्त्ता-कर्मपना नहीं हो सकता। इसीप्रकार एक कर्त्ता उन दोनों भावों को करे – ऐसा नहीं होता। जो राग से भिन्न पड़कर ज्ञानपने से परिणमा वह ज्ञानी ज्ञान को ही अपने कर्मपने से करता है किन्तु राग को कर्मपने नहीं करता, उससे भिन्न अकर्ता ही रहता है। जो राग का कर्त्ता होकर उसमें तन्मय होकर परिणमता है वह जीव ज्ञानी नहीं अज्ञानी ही है। ज्ञानी तो राग के काल में भी राग से भिन्न चैतन्यपने ही अपने को जानता है और चैतन्य में तन्मय होकर ज्ञानपने ही परिणमता है, जब उसमें राग का ही कर्तृत्त्व नहीं है तो जड़ की क्रिया तो कहीं दूर जड़ में ही रह गई। शरीर तो धूल का पुंज है, उसका कर्त्ता चेतन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रभु कैसे हो ? चेतन प्रभु को राग का कर्त्तत्व शोभा नहीं देता। वह तो राग से भिन्न अपने चैतन्य स्वभाव में अतीन्द्रिय शान्ति सहित ही शोभा पाता है – ऐसा भेद-ज्ञान वह प्रशंसनीय है, वह बखान करने जैसा है। जिसने भेद–ज्ञान किया वह धन्य है, वह सुकृतार्थ है, वही वास्तव में पण्डित है।

अरे ! तेरा सम्यक् स्वरूप क्या है उसे तो पहिचान। भाई ! ऐसा अवसर पाकर यदि अपने सत्य स्वरूप को तूने नहीं पहिचाना तो तूने क्या किया ? आत्मा के ज्ञान बिना पशु के जीवन में और तेरे जीवन में क्या अन्तर हुआ ? और तिर्यंच गति का भी जो जीव भेद–ज्ञान करता है वह प्रशंसनीय है, वह देव जैसा है। अरे ? जिसने अपने चैतन्यरस की मिठास चखी, उसे राग में या पर में अपनापन मानता कहाँ रहा ? और उसमें मिठास भी कहाँ रही ? चैतन्य के अतिरिक्त अन्य कहीं भी अतीन्द्रिय आनन्द की मिठास है ही नहीं। इसलिए भेद-ज्ञान से ज्ञानी अपने चैतन्य के परम आनन्दमय रस का स्वाद चख कर समस्त जगत से और राग से भी उदासीन होकर विरक्त वर्तते हैं। अहो ! जो ऐसा भेद-ज्ञान करते हैं उनका बेड़ा भव समुद्र से पार हो जाता है।

लाख बात की बात

सम्यग्ज्ञान की आराधना का उपदेश देने के बाद अब अन्त में सारभूत बात विशेष रूप से कहते हैं :–

प्रण्य–पाप फल मांहि, हरख बिलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।।
लाख बात की बात, यहै निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दन्द–फन्द, निज आतम ध्याओ।। ९।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

देखो ? सम्यग्ज्ञान कैसा है ? कि पुण्य-पाप से भिन्न है। हे भव्य जीवो ! तुम पुद्गल से भिन्न और पुण्य-पाप से भी भिन्न ऐसे चैतन्यस्वरूप आत्मा को जानकर सम्यग्ज्ञान प्रकट करो। ऐसे ज्ञान पूर्वक तुम पुण्य-पाप के फल में हर्ष-विषाद मत करो, क्योंकि वह तो पुद्गल की पर्याय है, वह उपज कर नाश होती है और पुनः प्रकट होती है। लाखों बातों में साररूप ऐसी यह एक बात है, उसको निश्चय से अन्तर में धारण करो, जगत के सब द्वन्द-फन्द तोड़कर अन्तर में अपने आत्मा का सदा ध्यान करो।

सम्यग्ज्ञान आत्मा को जानने वाला है, वह परम अमृत है और पुण्य-पाप से भिन्न है। इसलिए कहते हैं कि हे आत्मार्थी भाई तुम पुण्य के फल में हर्ष मत करो और पाप के फल में दुःख मत कर। पहले शुभाशुभ भावों से पुण्य-पापरूप कर्म बाँधे थे, उनके फल में जो पुद्गल संयोग मिला, वह जीव के वर्तमान प्रयत्न का फल नहीं है, उसीप्रकार उसमें जीव को सुख-दुख नहीं है, ज्ञान से वह भिन्न है, अतः उसमें हर्ष-विषाद मत करो, परन्तु उन दोनों से भिन्न ऐसे ज्ञान का सेवन करके पुण्य-पाप में समभाव रखो। मिथ्यादृष्टि पुण्य-फल में सुख और पाप-फल में दुःख मानता है, अर्थात् उसमें हर्ष शोक करता है। ज्ञानस्वरूप आत्मा की दृष्टि होने से धर्मी जीव पुण्य और पाप एक दोनों को ज्ञान से भिन्न जानता है। लाखों बातों की सारभूत यह एक ही बात है कि जगत के सकल पुण्य-पाप का द्वन्द-फन्द तोड़कर ज्ञान स्वरूप आत्मा को नित्य ध्याओ। यह बात निश्चय कर अन्तर में धारण करो।

पुण्य-फल तो जली हुई खिचड़ी की तरह है। जैसे जली हुई खिचड़ी को कौवा, कुत्ता ही खाते हैं, मनुष्य नहीं खाता, वेसे ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा के गुण जले अर्थात् उनमें विकृत होकर राग हुआ, तब पुण्य बँधा। राग या उसका फल कहीं धर्मी जीव की खुराक नहीं है, धर्मी तो राग से भिन्न चैतन्यमय शान्ति को ही वेदता है, जबकि अज्ञानी उस राग में और राग के फल में सुख मानकर उसी को वेदता है। आत्मा अपनी शान्ति में से हटकर जब बाहर निकला तब शुभराग रूप कषाय भाव हुए, इनसे पुण्य बँधा, और इसके फल में लक्ष्मी इत्यादि पुद्गलों का संयोग मिला, इस प्रकार गुण की विकृति के फल में धर्मी जीव प्रफुल्लित कैसे हो ? इसमें सुख कैसे माने ? अरे! शान्ति के लिए मुझे किसी बाह्य संयोग की आवश्यकता ही कहाँ है ? मेरा ज्ञान स्वयं शान्तिस्वरूप है, इसमें राग या राग का फल नहीं है – ऐसा जानकर हे जीव ! तू अपने गुण का हर्ष कर, प्रमोद कर, चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा में एकाग्र होकर वीतरागी शान्ति की प्रसन्नता प्रकट कर। चैतन्य से विरुद्ध राग के फल में प्रसन्न होना तो मिथ्यादृष्टि का भाव है। सम्यग्ज्ञान होने के बाद जो अल्प हर्ष-शोक होता है वह भी पुण्य-पाप के फल रूप संयोग को इष्ट-अनिष्ट मानकर नहीं होता, तथा ज्ञान को भूलकर वह हर्ष-शोक नहीं होता। ऐसे सम्यग्ज्ञानपूर्वक जिसने पुण्य-पाप में हर्ष-शोक की बुद्धि छोड़कर समभाव प्रकट किया है, उसी को बाद में श्रावक के अणुव्रत अथवा मुनि के महाव्रत होते हैं, अतः उसका वर्णन सम्यग्ज्ञान के बाद करेंगे। सम्यग्ज्ञान बिना श्रावक-मुनिपना नहीं होता।

धन-कीर्ति-दुकान-मकान-निरोगता आदि सारे संयोग ज्ञान के कार्य नहीं हैं, वे तो पुण्य कर्म के कार्य हैं, उनमें हर्ष मत कर। वे तेरे ज्ञान की जाति के नहीं हैं। उसी तरह रोग-निर्धनता-अपयश आदि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रतिकूलतायें पापकर्म के कार्य हैं, वे ज्ञान के कार्य नहीं हैं, अतः उन प्रतिकूल संयोगों में हताश मत हो, विषाद मत कर। पुण्य-पाप दोनों से भिन्न परम निराकुल चैतन्यस्वरूप को लक्ष में ले, और उसी का अन्तर में ध्यान कर। ज्ञान प्राप्त करके उसका स्वाद चखने पर तुझे पुण्य-पाप दोनों में से रस उड़ जावेगा, आनन्द स्वरूप के वेदन से आत्मा स्वयं सन्तुष्ट हो जायेगा, उसमें ही सच्ची प्रसन्नता है, और वही पुण्य-पाप दोनों में समता है।

जीव ने अनादि से पुण्य को भला मानकर उसमें हर्ष किया, और पाप को बुरा मानकर उसमें विषाद किया, परन्तु शान्ति कहीं नहीं मिली। ज्ञानी तो दोनों से पार चैतन्य को जानकर उसमें एकाग्रता से शान्ति का वेदन करता है। मैं अपनी शान्ति को, अपने धर्म को साध रहा हूँ — फिर संयोग में हर्ष-शोक क्या ? धर्मी को कदाचित् पापोदय से रोगादि प्रतिकूलता हो, आजीविका संबंधी कठिनाई हो, अपमान होता हो, तथापि उन सबसे उसे कहीं धर्म में शंका नहीं पड़ती, क्योंकि ज्ञान तो संयोग से भिन्न ही है तथा अज्ञानी के पुण्य का उदय दिखाई पड़े, और ज्ञानी के पाप का उदय दिखाई पड़े, अज्ञानी राजा हो और ज्ञानी निर्धन हो, इससे कहीं धर्मी घबड़ाता नहीं, कि मैं धर्मी और मेरे समक्ष ऐसे संयोग ? वह जानता है कि यह तो पुण्य-पाप के खेल हैं। संसार में पुण्य-पाप के खेल तो ऐसे ही होते रहते हैं, मेरा ज्ञान तो उनसे भिन्न ही है। संकल्प-विकल्प की होने वाली तरंगावली को लांघकर स्वरूप की शान्ति में विशेष एकाग्र कैसे हुआ जाय, उसी की धर्मी को भावना है। पुण्य-पाप के उदय से संयोग में अनुकूलता के ढेर लगे हों अथवा प्रतिकूलता का पार न हो, तथापि उसके कारण वह अपने को सुखी-दुःखी नहीं मानता। हमारा सुख हमारे आत्मा में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, वह पुण्य-पाप से रहित है, इस सुख को हम अपने सम्यग्ज्ञान से साध ही रहे हैं, इसलिए पुण्य-पाप दोनों के संयोग के प्रति समभाव है। पुण्य हो या पाप, ज्ञानी दोनों को ज्ञान से भिन्न जानता है, थोड़ा भी हर्ष-खेद हो तो उसे भी ज्ञान से भिन्न ही जानता है, अर्थात् सम्यग्ज्ञान स्वयं उस हर्ष-खेद में जुड़ नहीं जाता।

इसप्रकार पुण्य-पाप से ज्ञान को भिन्न जानकर हे भव्य जीवो ! तुम निश्चय से ज्ञानस्वरूप आत्मा को ही अन्तर में निरन्तर ध्याओ, यही लाखों का सार है। शास्त्र पढकर, वैराग्य लेकर, निवृत्ति लेकर तथा सतसंग आदि करके भी आत्मा को जानना ही सब बातों का सार है। सब कुछ कर-करके भी यदि आत्मा को नहीं जाना तो सब असार है – व्यर्थ है। जिसने आत्मा को जान लिया उसने सारभूत सब कर लिया।

सम्यग्दृष्टि श्रावक ऐसा विचारता है कि यदि मेरी श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति रूपी आत्मसम्पदा मेरे पास है, तो मुझे बाहर की सम्पदा से क्या काम ? और जहाँ ऐसी आत्मसम्पदा न हो वहाँ बाह्य सम्पदा के ढेर भी लगे हों तो भी उनसे क्या ? रत्नकरण्ड श्रावकाचार में भी कहा है :–

यदि पापनिरोधो न्य सम्पदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्रवो स्त्यन्य सम्पदा किं प्रयोजनम्।।२७।।

यदि मेरे सम्यक्त्वादि से आस्रव का निरोध है तो उसके फल में केवलज्ञानादि अनन्त चैतन्य सम्पदा मुझे सहज में मिलेगी, फिर मुझे बाह्य सम्पदा का क्या काम है ? और बाह्य सम्पदा के लिए यदि पाप-कर्म का आस्रव होता हो तो ऐसी बाह्य सम्पदा का भी मुझे क्या करना है ? मैं भगवान-आत्मा स्वयं असीम चैतन्य सम्पदा का भण्डार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हूँ आत्मा की सम्यक्-श्रद्धा-ज्ञानादि अचिन्त्य रत्नों का पिटारा मेरे पास है तो फिर बाहर की जड़-लक्ष्मी से मुझे क्या प्रयोजन ? समयक्त्वादि के प्रताप से मेरे अन्दर में सुख-शान्तिरूप समृद्धि वर्तती ही है फिर मुझे अन्य किसी से क्या काम ? और जिसको अन्तर में शान्ति नहीं है; सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि रत्नों की सम्पदा जिसके अन्तर में नहीं है, तो बाहर की सम्पदा के ढेर से उसे तो क्या लाभ होगा ? सच्ची सम्पदा तो वह है कि जिससे आत्मा को शान्ति मिले, अर्थात् आत्मा की सच्ची श्रद्धा-ज्ञान वीतरागता हो वास्तव में सम्पदा है। ऐसी सम्पदा वाला सुखिया धर्मात्मा बाहर की अनुकूलता-प्रतिकूलता दोनों को अपने से भिन्न जानता है, अर्थात् उनमें उसे हर्ष-शोक नहीं होता, ज्ञान जुदा ही रहता है। ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान अन्तर में प्रकट करना ही सबका सार है।

मूढ़ लोग बाह्य लक्ष्मी को ही सर्वस्व मानते हैं, वे लक्ष्मी के लिए जीवन खपा देते हैं और अनेक प्रकार के पाप बाँधते हैं, उन्हें सुख कभी नहीं मिलता। बापू! ज्ञानादि अनन्त चैतन्यरूप तेरी सच्ची लक्ष्मी तेरी आत्मा में ही भरी है, उसे देख ! तेरी चैतन्य सम्पदा में बाहर की अनुकूलता या प्रतिकूलता कैसी ? ऐसी चैतन्य सम्पदा के भान बिना सच्ची शान्ति या श्रावकपना नहीं होता। सम्यग्दृष्टि की दशा तो पुण्य-पाप से भिन्न ही होती है। सम्यग्दर्शन के प्रताप से त्रिलोक में श्रेष्ठ सम्पदारूप सिद्ध पद प्राप्त होता है फिर दूसरी किसी भी सम्पदा का क्या प्रयोजन है ? बाह्य सम्पदा तो वास्तव में सम्पदा ही नहीं है।

अरे जीव ! पाप के फल में तू दुखी मत हो, हताश मत हो संयोग के समय ही उस संयोग से तेरा ज्ञान तो भिन्न ही है, उसे पहिचान। पाप का उदय आने पर चारों ओर से प्रतिकूलतायें आ पड़ें, स्त्री-पुत्रादि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मर जावे, असाध्य रोग से पीड़ा हो जावे, धन नाश हो जावे, गृह दहन जावे, महा अपयश हो जावे, अरे ! नरक का संयोग भी मिले, श्रेणिक आदिक असंख्य सम्यक्दृष्टि जीव नरक में हैं इसप्रकार एक साथ ही हजारों प्रतिकूलतायें आवें तथापि सम्यग्दृष्टि अपने ज्ञानस्वरूप की श्रद्धा को नहीं छोड़ता है। भाई ! इन संयोगों में आत्मा कहाँ है ? आत्मा तो इनसे भिन्न है, और आत्मा का आनन्द उसी में है, अतः आत्मा का ही आश्रय कर, इससे तुझे चैतन्य की अपूर्व शान्ति का वेदन होता रहेगा।

जिसप्रकार प्रतिकूलता से भिन्नपना कहा उसीप्रकार पुण्य के फल में चतुर्दिक् अनुकूलता हो – स्त्री-पुत्रादि अच्छे हों, निरोग शरीर हो, धन हो, बंगला-मोटर आदि हों, यश चारों तरफ फैल रहा हो, अरे ! देवलोक में उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्धि की ऋद्धि हो, तथापि उन सबसे क्या लाभ ? उन संयोगों में कहीं आत्मा है क्या ? आत्मा तो उनसे भिन्न ही है, आत्मा का आनन्द आत्मा में है – ऐसा धर्मी जानता है और उसके ज्ञान में उसका ही वेदन वर्तता है। पुण्य-पाप के कारण वह अपने को सुखी-दुखी नहीं मानता। जैसे किन्हीं अरहन्तों को तीर्थंकर प्रकृति के उदय से समवशरणादि का अद्भुत संयोग होता है, परन्तु उन संयोग के कारण अरहन्त भगवान सुखी नहीं हैं उनका सुख तो आत्मा के केवलज्ञानादि परिणमन से ही है, अर्थात् वे स्वयंभू हैं, उनमें किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं है, उसीप्रकार निचली दशा में भी सर्वत्र ऐसा ही समझना। सम्यग्दृष्टि अपने शुद्ध चैतन्य परिणमन से ही सुखी है, पुण्य से अथवा बाह्य संयोग से नहीं।

भाई ! संसार में पुण्य-पाप के फल तो चलती-फिरती छाया जैसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं। कोई आज बड़ा जौहरी हो और कल भिखारी हो जाय, पैसा-पैसा मांगता फिरे, अथवा आज तो भिखारी हो और कल ही बड़ा राजा बन जाय, क्या यह ज्ञान का काम है ? यह तो जड़ पुद्गल की क्रिया है। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, उसमें न तो पुण्य है और न पाप है, पुण्य-पाप के कारणरूप राग भी आत्मा के ज्ञान स्वभाव में नहीं है। ऐसे अपने स्वरूप को करोड़ों उपायों से भी पहिचानना योग्य है, तथा जगत के झंझट छोड़कर अन्तर में उसी आत्मा का ध्यान करना उचित है – यही लाखों बातों का सार है। इसके बिना दूसरी लाखों बातें भले करे, परन्तु मात्र बातों से बड़ा नहीं बन सकता – आत्मा के कल्याणपथ पर नहीं जा सकता। ज्ञानस्वरूप आत्मा का निर्णय करके सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान प्रकट करने पर जन्म-मरण का फन्दा छूट जाता है, इसलिए वही वास्तव में सार है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान के बिना दूसरी लाखों बातें सब असार हैं – उनमें सार नहीं, और आत्मा का किंचित् भी हित नहीं है।

शुभ-अशुभ भावकर्म हैं, पुण्य-पाप कर्म द्रव्यकर्म हैं, और उनके फलस्वरूप अनुकूल-प्रतिकूल सामग्री नोकर्म हैं – इन तीनों में कहीं आत्मा की शान्ति नहीं है अतः उनकी रुचि छोड़। उन सबसे भिन्न अपना ज्ञानस्वरूप आत्मा महा आनन्द और शान्ति का धाम है। यदि तू अनन्तकाल से अप्राप्त अपूर्व आत्मशान्ति चाहता है, अपना महान चैतन्य निधान देखना चाहता है, तो पुण्य-पाप, राग-द्वेष और बाह्य सामग्री से भिन्न अपने चैतन्य की ओर सोल्लास सन्मुख होकर उसकी श्रद्धा-ज्ञान कर और उसी का ध्यान कर। यही सर्व शास्त्रों का सार है और संसार के अभाव का उपाय है।

देखो ! यही मुमुक्षु को करने जैसा कार्य है। कब ? कि सदा ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'नित आतम ध्यावो' अर्थात् आत्मा को सदा पुण्य-पाप से भिन्न ज्ञान स्वरूप ही भावो। पुण्य के फल से मैं सुखी और पाप के फल से मैं दुखी – ऐसा एक क्षण भी मत भावो। उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके अपने अन्तर में ही उसका ध्यान धरो – यही भगवान जिनेन्द्र की आज्ञा है और सन्तों ने भी ऐसा ही कार्य किया है। सन्तों के सर्व उपदेश का सार इसमें ही समा जाता है।

शरीर के हाथ-पैर की क्रियायें तो जड़ की हैं, उन क्रियाओं को करने का आत्मा का अधिकार नहीं है क्योंकि आत्मा उनसे अत्यन्त भिन्न है। राग-द्वेषादि भाव अपने में होते हैं परन्तु वे भी आत्मा के चैतन्यस्वरूप से बाह्य हैं, अतः राग-द्वेष की, पुण्य-पाप की और उनके फल की रुचि छोड़कर, उनसे भिन्न ऐसे अपने चैतन्य तत्व की ही प्रीति कर और अन्तर में उसकी ही महिमा करके चित्त को उसमें ही एकाग्र कर। शान्ति का मार्ग यही है, बाकी पुण्य-पाप के फल तो थोथे हैं, जड़ हैं, उनमें कहीं शान्ति नहीं है। चैतन्य की शान्ति में घुसने पर जगत का फन्दा कैसा ? और पुण्य-पाप का द्वन्द कैसा ? जब आत्मा अन्तर्मुख होकर शान्ति के वेदन में उतर गया, तब पुण्य-पाप, हर्ष-शोक अथवा राग-द्वेष का द्वन्द फन्द नहीं रहता। हे मुमुक्षु ! हित के लिए आत्मस्वरूप को जानकर उसी की भावना कर। पुण्य में सुख है, जड़ की सामग्री में सुख है, या वह जड़ की क्रिया मेरी है – ऐसा क्षणमात्र भी चिन्तवन मत कर। पुण्य-पाप तो जगत के फन्द हैं और आत्मा आनन्दकन्द है, आनन्दकन्द में राग-द्वेष के फन्द नहीं हैं।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसे जानो। परवस्तु आत्मा के अधिकार की नहीं है, अतः चिन्ता छोड़कर सदा अपने आत्मा को पुण्य-पाप से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भिन्न करके ध्यावो। पुण्य-पाप अथवा संयोग शाश्वत् नहीं हैं, आत्मा ही शाश्वत तत्व है, उसको दृष्टि में लेना ही सम्यग्दृष्टि का सत्त्व है, वही सम्यग्दृष्टि का कार्य है। बीच में पुण्य-पाप के भाव आवें वे कहीं सम्यग्दृष्टि का कार्य नहीं हैं, वे कहीं चैतन्य के सत् तत्व नहीं हैं, वे कहीं चैतन्य के साथ शाश्वत रहने वाले नहीं हैं।

सत्य ज्ञानवन्त जीव पुण्य-पाप के फलरूप बाह्य पदार्थ में इष्ट अनिष्ट बुद्धि नहीं करता। भिन्न वस्तु से क्या लाभ-हानि है ? और उसमें कैसा हर्ष शोक कीर्ति हो या न हो , धन हो या न हो, मकान हो या न हो, शरीर निरोग हो या रोगी हो, इन सबसे निरपेक्ष रहकर 'मैं तो ज्ञानमात्र हूँ और ज्ञान ही शान्तिस्वरूप है' – ऐसे अपने आत्मा का ही ध्यान करो।

जगत के फन्द में या पुण्य-पाप के द्वन्द में मत पड़ो। संसार में पुण्य तुझे ऊँचा चढ़ायेगा, और पाप नीचे गिरायेगा, अतः ऐसे पुण्य-पाप के फन्दे में तू मत पड़। यह सब द्वन्द-फन्द छोडकर सदा उनसे भिन्न चिदानन्द स्वरूप आत्मा का ध्यान कर, यही लाखों बातों में सार बात है। हित की नीति तो यही है। अन्य कोई हित इस जगत जंजाल में है ही नहीं। संसार के लाभ के लिए, धन के लिए, रोग मिटाने के लिए, कुदेवादि की मान्यता करना तो अज्ञान है। धर्मी जीव वीतराग भगवान के भक्त हैं, वह कभी सांसारिक फल की वाँछा नहीं करता। आत्मा के स्वभाव के अलावा अन्य किसी की उसे भावना नहीं होती। चाहे जितनी अनुकूलता प्रतिकूलता आ जावे तो भी सम्यग्दृष्टि हर्ष-शोक में एकाकार होकर ज्ञान स्वभाव को नहीं भूलता।

कोई कहे कि हम जैन हैं, वीतरागदेव के भक्त हैं, और वह तनिक सी अनुकूलता आने पर ललचा जावे तथा हर्ष में एकाकार हो जावे,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अथवा प्रतिकूलता आने पर अन्दर महा खेद-खिन्न होकर उस खेद में एकाकार हो जावे, हर्ष-शोक से भिन्न ज्ञान को भूल जावे, संयोग बिखरने पर ऐसा माने, मानो आत्मा ही खो गया हो– यह वीतराग के भक्त को शोभा नहीं देता। जिन भगवान का भक्त धर्मी तो चाहे जिस संयोग में पड़ा हो फिर भी संयोग से भिन्न आत्मा को भूलता नहीं है, आत्मा का ज्ञान छोड़कर उसको हर्ष-शोक नहीं होता, ज्ञान हर्ष-शोक से भिन्न ही रहता है अर्थात् उसमें शान्ति का वेदन रहता है।

बहुत से लोग कहते हैं कि अरेरे ! हमें तो कहीं भी शान्ति नहीं है। परन्तु भाई, तू अपने को वीतराग का भक्त और जिनेश्वर का पुत्र मानता है फिर तुझे शान्ति क्यों नहीं ? विचार तो कर ! वीतराग का पुत्र राग में या राग के फल में नहीं अटकता, वह तो दोनों का ज्ञाता रहकर अपने ज्ञान की अपूर्व शान्ति का अनुभव करता है। नरक की प्रतिकूलता के सामने यहाँ की प्रतिकूलता भला किस गिनती में है ? तथापि वहाँ की घोर प्रतिकूलता के बीच में भी सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा को उस प्रतिकूल संयोग से भिन्न ज्ञान स्वरूप जानता है, और उसकी शान्ति का वेदन वहाँ भी करता है। हर्ष-शोक से पार आत्मा के आनन्द का स्वाद उसने चखा है। नरक के संयोग मुझे अनिष्ट और स्वर्ग के संयोग मुझे इष्ट – ऐसा वह नहीं मानता। वह तो मानता है कि मेरा ज्ञान सभी संयोगों से भिन्न है, कोई भी बाह्य वस्तु मुझे इष्ट-अनिष्ट नहीं है। अपना मोह अनिष्ट है और ज्ञान इष्ट है। जीव में तो ज्ञान की छाप है, संयोग की छाप जीव में नहीं है। यह संयोग जीव को इष्ट और यह संयोग अनिष्ट – ऐसा नहीं है। जीव तो ज्ञान है, ज्ञान में सभी ज्ञेय हैं, ज्ञान के लिए कोई भी संयोग ठीक-अठीक नहीं है, इसप्रकार धर्मी अपने को पर से भिन्न ज्ञानपने ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुभव करता है।

अज्ञानी मानता है कि 'समय बदलता है जब सभी पलटता है तब, मानों संयोग पलटने पर आत्मा ही सारा पलट गया हो; इसप्रकार अज्ञानी संयोग में ही हर्ष-शोक किया करता है। किन्तु भाई संयोग में तू है ही कहाँ ? संयोग पलटने पर तू कहाँ पलटा है ? तू तो ज्ञानरूप ही रहा है। संयोग से भिन्न ज्ञानस्वरूप को लक्ष में तो ले, ऐसा करने से तेरी हर्ष-शोक की बुद्धि छूट जावेगी जो संयोग मिलने पर तुझे उत्पन्न हो जाती है, और ज्ञान की भावना से अपूर्व शान्ति का वेदन होने पर संसार के जन्म-मरण का फन्दा कट जावेगा, इसलिए भेद-ज्ञान करके ऐसी ज्ञानभावना निरन्तर करना चाहिए यही जगत में सार है। ज्ञान की भावना भाना और पुण्य-पाप के फल में हर्ष-शोक नहीं करना। जब पर-वस्तु की ममता करे तब ही उसे भली-बुरी माने और हर्ष-शोक उत्पन्न हो, किन्तु पर-वस्तु मेरे में है ही नहीं, मैं तो ज्ञान हूँ – इसप्रकार पर से भिन्न आत्मा के स्वभाव को भावे तो उसमें हर्ष-शोक नहीं हो, जन्म-मरण का द्वन्द नहीं हो, और संसार के फन्द से छूटकर आत्म-शान्ति प्रकट हो।

सिद्धान्त यह है कि आत्मा का ज्ञानस्वभाव ही भला है सुन्दर है, और समस्त पुण्य-पाप का विकार बुरा है। इसके अतिरिक्त संसार में कोई वस्तु भली-बुरी नहीं है। इसप्रकार ज्ञान को ही सुन्दर – भला मानकर, पर को भला-बुरा नहीं मानना चाहिए और उसमें हर्ष-शोक भी नहीं करना चाहिए। जिसने पर को हितरूप या अहितरूप माना, उसने सारे जगत के प्रति राग-द्वेष करने जैसा माना अर्थात् उसके अनन्तानुबंधी राग-द्वेष हुआ। जब पर से भिन्न अपने ज्ञानस्वभाव को जाने और उसे ही भला – सुन्दर सुखरूप माने तब उसमें सन्मुखता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो और पर में राग-द्वेष का अभिप्राय छूटकर स्वभाव प्रकट हो। अतः ज्ञानस्वरूप का निर्णय करके उसके सन्मुख होना, यही लाखों बातों का सार है और यही सुखी होने का मार्ग है।

ज्ञानी पुण्य के फल में मिली सामग्री को हितकर और पाप के फल में मिली सामग्री को अहितकर नहीं मानता। मैं उनसे भिन्न ज्ञानानन्द स्वभावी आत्मा हूँ – ऐसा आत्मज्ञान ही मुझे हितकर है, अन्य कुछ भी हितकर नहीं। अज्ञान ही अहितकर था उसका तो नाश हो गया है। अज्ञानी को भी वास्तव में पर-वस्तु कहीं अहितकर नहीं है, उसको भी उसका अज्ञान ही अहितकर है। द्वितीय ढाल में कहा था मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र वश जीव जन्म-मरण के दुख भोग रहा है। इसलिए इन तीनों को छोड़ दो, तभी तुम्हारा कल्याण होगा।

रागादि तो प्रकटपने दुख हैं, राग अशुभ हो या शुभ हो, दोनों में दुख ही है, परन्तु अज्ञानी उनमें सुख मानकर सेवन करता है और उनके फल में सुख-दुख मानता है। दूसरी ढाल में कहा है :–

रागादि प्रगट ये दुःखदैन तिनहीं को सेवत गिनत चैन।

देखो यह अज्ञानी का लक्षण, भाई राग से भिन्न तेरा ज्ञान ही तुझे सुख देने वाला है। पुण्य-पाप तो आस्रव हैं वह तो संसार का कारण है, उसमें सुख कैसे होगा ? भेद-ज्ञान समान कोई सुख नहीं, भेद-ज्ञान के अलावा कोई मोक्ष का कारण नहीं। इसलिए हे मोक्षार्थी जीव ! सर्व प्रयत्न से ऐसे आत्मा का ज्ञान करके उसको ही ध्यावो। सकल जगत के द्वन्द-फन्द को छोड़कर अन्तर में लाख उपाय करके भी अपने आत्मा को लक्ष में लो, उसी का ध्यान करो, यही द्वादशांग का सार है।

"सकल जगत" कहने पर, संसार में पुण्य के फल हों अथवा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पाप के फल हों, वे सब उसमें आ गए। आत्मा का ज्ञान उन सबसे भिन्न है। सकल जगत से भिन्न शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम – ऐसा अनुभव ही ज्ञानीदशा है। ऐसे अनुभव बिना तो सब थोथा (तोते जैसा ज्ञान) है, वह कुछ सारभूत नहीं है। सार तो सम्यग्ज्ञान है जो कि मरण के समय भी जीव को समाधि प्रदान करता है।

मरण बेला आवे, शरीर कुछ काम न करे, श्वांस भी सीधी न आवे, तथापि यह सब विषमतायें आत्मा के ध्यान में बाधक नहीं हैं। आत्मा के ऊपर जिसकी दृष्टि है वह बाह्य प्रतिकूलता के समय भी अन्दर सम्यग्ज्ञान और शान्ति रख सकता है। शरीर भले ही अनुकूल न हो, शरीर ठीक रहे तो ही आत्मा का ध्यान हो – ऐसा नहीं है। यदि ऐसा माना जाय तो ज्ञान की अपेक्षा शरीर का मूल्य बढ़ जावेगा। शरीर भले ठीक हो या न हो, भले सुलगता हो, परन्तु ज्ञान ठीक हो तो पाण्डवों और गजकुमार मुनि के समान आत्मा का ध्यान और शान्ति हो सकती है। शरीर ध्यान में विघ्न नहीं डालता और सहायता भी नहीं करता। कोई अज्ञानी हो, पुण्य करके स्वर्ग जावे, वहाँ उस देव को असंख्यवर्ष तक सुन्दर निरोग वैक्रियक शरीर आदि स्वर्गानुकूल संयोग होने पर भी यदि वह सम्यग्दर्शन प्रकट नहीं कर पाता, तो वहाँ पुण्य या उसके फल ने उसका क्या हित किया ? और इसके विपरीत कोई जीव पाप करके नरक में गया, वहाँ असंख्य वर्ष तक नरक की भयंकर प्रतिकूलता के मध्य भी, उससे भिन्न चैतन्य का भान करके सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया, तो वहाँ उस प्रतिकूल संयोग ने उसका क्या बिगाड़ा संयोग तो आत्मा से भिन्न है। भाई ! वह तो चैतन्य को कभी स्पर्श ही नहीं करता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अरे ! नरक में प्रतिकूलता की क्या बात ? जहाँ शरीर में करोड़ों भयंकर रोग हैं, असंख्य वर्ष तक खाने को दाना और पीने को पानी की बूंद भी नहीं मिलती, शरीर के तिल–तिल जैसे खण्ड हो जाते हैं, नारकी एक दूसरे को पकड़कर बाँधते हैं, लोहे की कड़ाही में डालते हैं और ऊपर से मुंह बंद करके घन मारते हैं, गरम लोहे के आभूषण पहनाते हैं, लोहा पिघलाकर मुँह में डालते हैं, तथापि ऐसी प्रतिकूलता के बीच में भी, जो कोई जीव उनमें सम्यग्दृष्टि होता है वह जानता है कि अरे ! मेरे चैतन्य को यह संयोग छूते ही नहीं, इस प्रतिकूलता का प्रवेश मेरे चैतन्यभाव में है ही नहीं, मैं तो उससे भिन्न ज्ञानानंद स्वरूप आत्मा हूँ। तथा कोई जीव उस समय ही ऐसा भान प्रकट करके सम्यग्दर्शन भी प्राप्त कर लेते हैं। बाहर में शरीर तो कड़ाह के अन्दर जल रहा है और उसी समय आत्मा अतीन्द्रिय शान्ति में मग्न है। देखो तो सही ! चैतन्यतत्व का स्वभाव उन प्रतिकूल संयोगों में रहकर भी उनसे भिन्न ही है।

उन प्रतिकूल संयोगों के समय भी, पूर्वभव में किन्हीं मुनिराज के पास से चैतन्य की बात सुनी हो, और वे संस्कार जाग उठे कि अरे ! क्या ऐसे प्रतिकूल संयोग और दुःख के वेदन में ही सदा रहने का आत्मा का स्वरूप होगा ! अथवा अन्दर कोई शान्ति की वस्तु भी होगी। मुनिराज मुझसे कहते थे कि हे आत्मा ! तू तो आनन्दस्वरूप है – इसप्रकार स्मरण करके वह तुरन्त अन्दर उतर जाता है और आत्मा का अनुभव करे, सम्यग्दर्शन प्राप्त करके, परम चैतन्य का स्वाद चख लेता है। वहाँ नरक के संयोग के बीच में पड़ा-पड़ा भी, चैतन्य के आनन्द का वेदन करता है। संयोग में तो शरीर पड़ा है, आत्मा तो उस समय भी असंयोगी चैतन्यभाव में झूल रहा है और परम सुख वेद

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहा है। अरे ! एक बार संयोग से भिन्न अपने आत्मा की दृष्टि तो कर। अनन्त परद्रव्य और परभावों से भिन्न टिके रहने की अपूर्वशक्ति उस दृष्टि में भरी है, तीनों लोक खलबला उठे तो भी वह अपने स्वरूप से चलित नहीं होती। स्वरूप-दृष्टि होते ही चैतन्य की अपार दौलत प्रकट हो जाती है।

बाहर के प्रतिकूल संयोग तो आत्मा से बाह्य हैं, वे कहीं आत्मा में घुस नहीं गये हैं। पूर्व में किसी मुनि या ज्ञानी ने आत्मस्वरूप समझाया, तब उसकी महिमा नहीं जगी, और पाप करके यहाँ नरक में जन्म लिया। अरे ! ऐसा दुःख। परन्तु आत्मा को ऐसे दुःख का वेदन सदा रहने वाला नहीं, अन्दर कोई न कोई छुटकारे का उपाय अवश्य होगा। अन्दर शान्ति का स्थान कोई अवश्य होगा। ऐसा विचारने पर आत्मा का स्वरूप लक्ष में लेकर अन्दर उतरकर वह नारकी का जीव क्षणभर में सम्यग्दर्शन पा जाता है। स्वर्ग के मिथ्यादृष्टि देव को भी जो सुख नहीं, वैसा अपूर्व सुख वह अनुभव कर लेता है। संयोग तो संयोग में रहा और वेदन वेदन में रहा, अन्दर चैतन्यपरिणति उस संयोग और संयोग की तरफ के वेदन से छूटकर, असंयोगी आनन्दमय तत्त्व में घुस गई है – ऐसी धर्मी की दशा है।

आत्मा स्वयं आनन्द है, प्रतिकूल संयोग भले खड़ा हो, परन्तु वह अरूपी आत्मा से भिन्न है, उसमें आत्मा मिल नहीं गया है। ऐसे आत्मा को लक्ष में ले तो कितनी शान्ति हो। संयोग के कारण कहीं अशान्ति नहीं है, बापू ! तू उसका लक्ष छोड़। लाख प्रतिकूलता हो तो भी उनसे पार आत्मा का ध्यान कर। यही लाख बात का सार है और यही शान्ति का उपाय है।

तू शरीरादि को अनुकूल रखने की जितनी चिन्ता करता है उतनी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चिन्ता यदि आत्मा के हित के लिए करे तो अवश्य ही हित हो। शरीर की चिन्ता तो निरर्थक है, उसमें तेरा कुछ भी वश नहीं चल सकता। शरीर प्रतिकूल भले हो, किन्तु उससे भिन्न आत्मा की दृष्टि और उसकी शान्ति का वेदन उसी समय हो सकता है। शरीर की प्रतिकूलता कहीं उससे भिन्नता की दृष्टि करने से रोक नहीं सकती। अतः उसमें हर्ष-विषाद मत करो। नित्य आत्मा का ध्यान करो। चाहे जैसा संयोग हो परन्तु है तो वह पर में ही, वह आत्मा में है ही कहाँ ? आत्मा अपने परिणाम में उसी समय उससे भिन्न अन्तर-लक्ष कर सकता है कि मैं तो आनन्दमय हूँ, सिद्ध जैसा मेरा स्वभाव है, मेरे चैतन्य वेदन में दुःख का अभाव है – इसप्रकार संयोग के समय संयोग से पार आत्मा का वेदन करे तो प्रतिकूल संयोग के मध्य भी अपूर्व शान्ति का वेदन रहता है।

देखो न ! शत्रुंजय पर्वत पर ध्यान-लीन पाण्डवों का शरीर गरम लोहमय आभूषणों से दग्ध हो रहा था फिर भी वे पाण्डव चैतन्य की अन्तर शान्ति में कैसे मग्न थे ? ऐसे मग्न थे कि उन्हें शरीर का लक्ष भी नहीं रहा और उसी शान्ति में मग्न रहकर आत्मकल्याण कर लिया। चैतन्य में कितनी अगाध शक्ति भरी है। उसका यह नमूना है; तथा गजकुमार श्रीकृष्ण के छोटे भाई थे, जिनका शरीर अत्यन्त कोमल था, वह मुनि होकर ध्यान में खड़े थे, तब मस्तक तो अग्नि में भड़-भड़ सुलग रहा था, किन्तु वह तो अन्दर चैतन्य की शान्ति रूपी बर्फ में मग्न थे, वहाँ अग्नि का कोई भी दुःख उन्हें नहीं था, उस अग्नि की ज्वाला में यह शक्ति थी ही कहाँ कि वह चैतन्य की शान्ति को छू भी सके। देखो तो सही, यह चैतन्य तत्त्व ! बाहर की प्रतिकूलता इस चैतन्य तत्त्व में है ही कहाँ ? उसी तरह समवशरणादि अनुकूल संयोग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हों तो उनसे भी आत्मा को क्या लाभ ? उनका भी लक्ष छोड़कर स्वयं अपने ज्ञानानन्द स्वरूप आत्मा की संभाल नहीं करते वे जीव तीर्थंकर भगवान के समक्ष रह कर भी मिथ्यादृष्टि ही रहते हैं। अरे भाई ! बाहर की अनुकूल वस्तु आत्मा को क्या करे ? ज्ञानानन्द का कोष तो अपनी आत्मा में अन्दर ही है, उसको लक्ष में न ले तो समवशरण में भले ही बना रहे, किन्तु वह मिथ्यादृष्टि – दुःखी ही है। यद्यपि समवशरण में बाहर का कोई दुःख नहीं है तथापि वह जीव अन्दर अपने मिथ्याभाव से दुःखी ही है, सुख का धाम तो उसने देखा ही नहीं तथा जिसने ज्ञानानन्दस्वरूप के धाम आत्मा में दृष्टि की, उसने सातवें नरक के अत्यन्त असहनीय कष्टदायक बाह्यसंयोगों में रहकर भी सम्यग्दर्शन उत्पन्न करके आत्मा के अतीन्द्रिय सुख का वेदन कर लिया, और जन्म-मरण के नाश का अवसर प्राप्त कर लिया।

चैतन्य तत्व का संयोग के साथ क्या सम्बन्ध है ? पर-संयोग के साथ एकता की कल्पना से जीव दुःखी है। उस संयोग में सुख-दुख मानना तो कल्पना मात्र है। वास्तव में जीव को संयोग का नहीं किन्तु अपनी परिणति का वेदन है। "सम्यग्दृष्टि नरक में भी सुखी और मिथ्यादृष्टि देवलोक में भी दुःखी" – ऐसा संयोग की तरफ से कहा जाता है, परन्तु वास्तव में तो सम्यग्दृष्टि अपनी निर्मल परिणति में सुखी है, और मिथ्यादृष्टि अपनी मिथ्या परिणति में दुःखी है। बाहर का सुखःदुःख जीव को नहीं है। इसलिए हे भाई ! पुण्य-पाप के फल में हर्ष-शोक अथवा सुख-दुःख न मानकर, उन दोनों से पार ऐसे चिदानन्द तत्त्व को लक्ष्य में लेकर समभाव से उसको ध्यान करो, यही सुख की रीति है।

सब जीवों को सुख की चाह है। वीतराग-विज्ञान वह सुख का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कारण है और उसकी ही यह बात है। आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है, उसकी सन्मुखता से उसको जानकर उसमें एकाग्र होने पर अपूर्व शान्ति होती है, और दुःख के कारणरूप पुण्य-पाप कर्म बंधे थे, उनके फलस्वरूप बाहर में जो अनुकूल-प्रतिकूल संयोग वर्तमान में प्राप्त हुए उनको पुद्गल पर्याय जानो, अर्थात् ज्ञान से भिन्न जानो और उनमें हर्ष-शोक मत करो। अनेकविध पुद्गल पर्यायें उपजती और नष्ट हो जाती हैं, वह पुद्गल कभी देवपर्याय के शरीररूप बनता है, वह पर्याय नष्ट होकर पुनः वही पुद्गल कभी नरक में नारकी के शरीररूप बन जाते हैं। यह सब पुद्गल की लीला है। मैं उन सभी पुद्गल पर्यायों से भिन्न चैतन्यस्वरूप हूँ – ऐसा जानो। अन्य सभी लाख काम छोड़कर भी ऐसे आत्मा को अन्तर में ध्यावो, वही मोक्ष दातार है।

पुण्य-पाप की उत्पत्ति ज्ञान में नहीं होती, उनकी उत्पत्ति तो पराश्रित विकार में से होती है और उसका फल पुद्गल-संयोग है, जो जीव से भिन्न है। शुभकर्म के फल में भी जीव को धर्म या सुख नहीं मिलता, कर्म का फल तो संसार ही है। इसप्रकार पुण्य-पाप का स्वरूप उनके फन्द रहित ज्ञानस्वरूप आत्मा को सदा ध्यावो। अहा! धर्मी की दशा में ज्ञान और राग भिन्न पड़ गया है। शुभराग से पुण्य और अशुभ से पाप – इनमें ज्ञान कहीं नहीं आया, ज्ञान अर्थात् धर्म तो उन दोनों से भिन्न वस्तु है। ऐसे ज्ञानस्वरूप का अनुभव ही सारभूत है – मोक्षमार्ग है। पुण्य या पाप कहीं सार नहीं है, वे तो असार संसार के मार्ग हैं। पुण्य मोक्षमार्ग नहीं है, वह तो कर्म बन्ध है, पुद्गल संयोग जीव को सुख-दुःख नहीं देते। संयोग के समय भी संयोग तो ज्ञान से भिन्न ही रहता है। हे भव्य! ऐसा मनुष्यपना पाकर करोंड़ों उपायों से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी तू सम्यग्ज्ञान प्रकट कर।

देखो, सम्यग्ज्ञान के लिए इसी ग्रन्थ में बारबार कितनी प्रेरणा दी है।

जग जाल भ्रमण को देहु त्याग, अब दौलत निज आतम सुपाग,

– दूसरी ढाल, छन्द 15

आपरूप को जानपनो सो सम्यग्ज्ञान कला है।

– तीसरी ढाल, छन्द 2

दौल ! समझ सुन चेत सयाने काल वृथा मत खोवै,
यह नरभव फिर मिलन कठिन है जो सम्यक् नहिं होवै ।

– तीसरी ढाल, छन्द 17

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण ।

– चौथी ढाल, छन्द 4

पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो ।

– चौथी ढाल, छन्द 5

संशय विभ्रम मोह त्याग आपो लख लीजे ।

– चौथी ढाल, छन्द 6

कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनो।

– चौथी ढाल, छन्द 7

जे पूरब शिव गए जाहिं अरु आगे जैहैं,
सो सब महिमा ज्ञान तनी मुनिनाथ कहे हैं।
विषयचाह–दवदाह जगतजन अरनि दझावै,
तास उपाय न आन ज्ञान घनघान बुझावै ।

– चौथी ढाल, छन्द 8

लाख बात की बात यहै निश्चय उर लाओ,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तोरि सकल जग द्वन्द–फन्द नित आतम ध्यावो ।

– चौथी ढाल, छन्द 9

अन्तिम ग्रीवक लौं की हद पायो अनंत बिरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ ।।

– पाँचवीं ढाल, छन्द 13

अब दौल ! होउ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूको यहै।

– छठवीं ढाल, छन्द 15

इसप्रकार छहढाला में बारम्बार भेद-ज्ञान की प्रेरणा दी गई है। अमृतचन्द्र स्वामी भी भेद-ज्ञान की महिमा बताकर समयसार में कहते हैं कि भेद-ज्ञान से ही सिद्धि प्राप्त होती है इसलिए केवलज्ञान होने तक अछिन्न धारा से इस भेद-ज्ञान को भावो।

हे भव्य ! तू भेद-ज्ञान से अन्तर में आत्मा को कर्म से भिन्न जान। शुभाशुभ राग से भी अपने ज्ञानतत्त्व को भिन्न जान। पुण्य पाप आत्मा की सन्मुखता से नहीं होते, वे तो पर-लक्ष से, शुभाशुभ भाव से होते हैं। आत्मा की सन्मुखता से तो सम्यग्दर्शनादि शुद्धभाव प्रकट होते हैं और वे शुद्धभाव पुण्य-पाप बन्ध के कारण नहीं होते, वे तो कर्म छेदन के कारण हैं।

पुण्य-पापकर्म के कारण स्वभाव से विरुद्ध ऐसे राग-द्वेषभाव हैं। पुण्य-पाप स्वयं पुद्गलकर्मरूप हैं, जीवरूप नहीं, और उनके फल में जो बाहर की सामग्री मिलती है, वह भी आत्मा से भिन्न है। बाह्य सामग्री तो जड़ है। वह चेतन स्वरूप आत्मा को छूती भी नहीं है।

इसप्रकार शुभ-भाव, पुण्य-पाप, और उनके फलरूप बाह्य सुख-दुख यह तीनों द्वन्द आत्मा के ज्ञान-स्वभाव से भिन्न हैं। ज्ञानस्वभाव की ओर झुककर एकाग्र हुआ भाव शुभाशुभ का कारण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं होता, इसलिए ऐसे ज्ञानस्वभाव का निर्णय करो, और पुण्य-पाप के फल में हर्ष-शोक छोड़ो – यह लाख बात की बात है, और करोड़ों प्रयत्नों से भी यही कार्य करने योग्य है। इस उपाय से ही आत्मा जगत के द्वन्द-फन्द से छूटकर सारभूत मोक्ष सुख का धनी होता है।

जिसे धर्म करना हो और सुखी होना हो – ऐसे मोक्षार्थी को सर्वप्रथम क्या करना चाहिए ? तो कहते हैं कि करोड़ों उपायों से प्रथम में प्रथम सव-पर का भेद-ज्ञान करना चाहिए।

पुण्य के फल में धन का ढेर या समाज में बड़प्पन मिले तो उससे आत्मा को लाभ नहीं हो जाता, ये सब मिलने से आत्मा का काम नहीं हो जाता। आत्मा के हित के लिए कोई संयोग या उसके लक्ष से होने वाला भाव कुछ काम नहीं आता। मैं ज्ञानानन्द स्वभावी आत्मा हूँ – इसप्रकार अपनी वस्तु को पहिचानकर यदि सम्यग्ज्ञान प्रकट करे तो उससे आत्मा का परम हित है, और वह ज्ञान आत्मा की वस्तु होने से आत्मा के साथ अचल रहता है, उसका वियोग नहीं होता। इसके विपरीत पुण्य के फलरूप संयोग तो छूट जाते हैं।

अरे जीव ! तू विवेक तो कर कि कौन सी वस्तु मिलने से तेरा हित है ? धन स्त्री आदि का संयोग अथवा भगवान या गुरु का संयोग – तेरा हित नहीं कर सकते। तू स्वयं संयोग से भिन्न आत्मा का ज्ञान कर, वह ज्ञान ही तुझे हितरूप है। श्री गुरु भी तुझे ऐसा ही करने का उपदेश देते हैं और ऐसा करना ही श्री देव-गुरु की परमार्थ विनय है।

अब, जैसे पुण्य का संयोग हित प्रदान नहीं करता वैसे ही, पाप के फल में असाता आदि प्रतिकूलता भी हित को नहीं रोकती। उस समय भी यदि भेद-ज्ञान करे तो यह जीव अपना हित कर सकता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संयोग क्या करेगा ? नरक में भी जीव सम्यग्दर्शन पाता है, वहाँ संयोग एक तरफ पड़ा रहता है और जीव संयोग का लक्ष छोड़कर अपने अन्तर में उतर कर अपूर्व शान्ति प्रकट करता है।

संयोग संयोग में रहता है आत्मा में उसका प्रवेश नहीं है। जैसे संयोग के समय जीव आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान कर सकता है, वैसे ही लक्ष बदलकर संयोग से भिन्न आत्मा के लक्ष से भेद-ज्ञान करके धर्मध्यान भी कर सकता है। करोड़ों प्रतिकूलताएँ दुःख का कारण नहीं हैं, तथा करोड़ों अनुकूलतायें सुख का कारण नहीं हैं, तथापि उनको दुःख या सुख का कारण मानने वाला जीव मिथ्यात्व के महान पाप का सेवन करता हुआ संयोगबुद्धि से अनन्त राग-द्वेष करता है और अनन्त कर्मों से बँधता है।

संयोग से भिन्न आत्मा को जानकर आत्मा की भावना करने वाले जीव को भविष्य में ऐसे प्रतिकूल संयोग भी नहीं आते। संयोग की भावना करने वाला जीव, स्वभाव की भावना छोड़कर, स्वभाव का विराधक होकर ऐसे कर्म बाँधेगा कि भविष्य में महा प्रतिकूल संयोग आयेंगे। इसलिए कहते हैं कि हे भाई ! तू वर्तमान में ऐसा सुयोग पाकर लाख प्रतिकूलताओं के बीच भी, और बाहर में लाख काम छोड़कर भी अपने आत्मा को पहिचान कर उसका ध्यान कर। आत्मा पुण्य-पाप के संयोग से भिन्न स्वयं परम शान्तिरूप निराकुल और ज्ञान-स्वरूप है। ऐसे आत्मा को लक्ष में लेकर उसमें झुकी हुई पर्याय संयोग को नहीं छूती। आत्मा को हर्ष-शोक करा सके ऐसी कोई शक्ति संयोग में नहीं है।

पुण्य-पाप के फल में हर्ष-शोक नहीं करना चाहिए, परन्तु ऐसा हो कैसे ? कि मैं पुण्य-पाप से पार चिदानन्द तत्व हूँ, और संयोग मुझ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

से भिन्न है, वह मुझे सुख–दुःख का कारण नहीं है, ऐसा भेद-ज्ञान करे, तभी हर्ष-शोक करना मिटे। संयोग के सामने देखते हुए "हर्ष-शोक नहीं करना" ऐसा कहने मात्र से हर्ष-शोक का अभाव नहीं हो सकता।

प्रश्न :– ज्ञानी को भी हर्ष–शोक होता तो दिखाई देता है न ?

उत्तर :– वह ज्ञान में नहीं होता, ज्ञान से भिन्न पने होता है। धर्मी जानता है कि जैसे संयोग भिन्न है, वैसे ही जो हर्ष-शोक होता है वह भी मेरे से भिन्न है। ज्ञानी पर के कारण हर्ष-शोक नहीं मानता और ज्ञान में उनको नहीं मिलाता, अर्थात् वह हर्ष-शोक उसको अत्यल्प है और वह भी सम्यग्ज्ञान धारा से तो भिन्न ही है। अज्ञानी एक ओर तो संयोग के कारण राग-द्वेष होना मानता है। पुत्रादि जन्में वहाँ हर्ष होगा ही, तथा उनके मरने पर शोक होगा ही – इसप्रकार वह पर के कारण से हर्ष-शोक होना मानता है। तथा दूसरी ओर वह हर्ष-शोकादि को ज्ञान से भिन्न नहीं जानता, किन्तु हर्ष-शोक ही मैं हूँ इस तरह उसरूप ही अपने को अनुभव करता हुआ उसको ज्ञान के साथ एकमेक मानता है, अर्थात् उसे ज्ञान को भूलकर मिथ्यात्व सहित राग-द्वेष होता है, जो अनन्त दुःख का कारण है। सम्यग्दृष्टि को अल्प हर्ष-शोक के समय उससे भिन्न सम्यग्ज्ञानधारा वर्तती है, वह ज्ञानधारा अनन्त सुखमय मोक्ष का कारण होती है – इस तरह ज्ञानी और अज्ञानी के बीच में महान अन्तर है।

सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती हो, किन्तु वह उस वैभव में स्वप्न में भी सुख नहीं मानता, अतः उसमें राग करने का उसका अभिप्राय नहीं होता। अज्ञानी पर-संयोग को सुख का कारण मानता है, इसलिये उसे राग करने का अभिप्राय नहीं छूटता। ज्ञानी-अज्ञानी का माप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंतरंग अभिप्रायानुसार है, बाहर के संयोग के अनुसार नहीं। जब कैलाश पर्वत से ऋषभदेव भगवान निर्वाण को प्राप्त हुए तब भरत जी को थोड़ा खेद हुआ, वह खेद भगवान के वियोग के कारण नहीं हुआ, तथा ज्ञानधारा में भी वह खेद नहीं हुआ, ज्ञानधारा तो उस समय भी उस खेद से भिन्न जीवंत वर्त रही थी। अज्ञानी तो प्रतिकूल प्रसंग को ही दुःख का कारण समझकर द्वेष करता है, उस द्वेष से भिन्न ज्ञानधारा उसके नहीं रहती, द्वेष में ही लीन होकर वह अज्ञान रूप परिणमन करता है। एक से ही प्रसंग में खेद तो दोनों को हुआ फिर भी एक को तो उस समय खेद से भिन्न ज्ञानधारा वर्त रही है और ज्ञानधारा से वह मोक्ष साध रहा है, जबकि दूसरे को उस खेद और संयोग में एकत्वबुद्धि होने से अज्ञान वर्त रहा है अतः वह संसार का कारण है। अरे! वह अज्ञानी कदाचित् खेद न करे और पुत्र मरण के प्रसंग पर शान्ति रखे तो भी चैतन्य के भान बिना वह दुःख के मार्ग में ही है। भेद-ज्ञान बिना सुख कैसे मिले?

अहा! भेद-ज्ञान अन्तर की कोई अपूर्व वस्तु है। वह चैतन्य तत्त्व को किसी राग-द्वेष अथवा संयोग में मिलने नहीं देता, भिन्न ही रखता है। ऐसा भेद-ज्ञान जिसे प्रकट हुआ उसकी दशा ही पलट गई, उसके भाव सम्यक् हो गये। अब जो राग-द्वेष रहा, वह अनन्तवें भाग है, ज्ञान उससे भिन्न पड़कर अनन्त महान हो गया है, अनन्त शक्ति वाली वह ज्ञानधारा अपने में राग-द्वेष का अंशमात्र भी प्रवेश नहीं होने देती।

अहा! मेरा परम आनन्द मेरे में है, वह कहीं दूसरे द्वारा लाने योग्य नहीं – इसप्रकार जिसने अपने में अपना आनन्द देखा, वह बाहर के किसी संयोग में आनन्द नहीं मानता अर्थात् उसमें उसे हर्ष नहीं होता। अज्ञानी अपने आत्मा के आनन्द को देखता नहीं और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संयोग में ही आनन्द मानता है इसलिये उसमें हर्ष करता है। ज्ञानी किसी संयोग को प्रतिकूल नहीं मानता अर्थात् उसको दुःख का कारण नहीं मानता, अतः उससे उसके ज्ञान में खेद नहीं होता, अज्ञानी संयोग को प्रतिकूल और दुःख का कारण मानता है इसलिये वह खेद करता है।

एक ओर चैतन्य का अस्तित्व, दूसरी ओर संयोग का अस्तित्व दोनों का अस्तित्व अपने-अपने में भिन्न-भिन्न है – ऐसा जो नहीं जानता वह अज्ञानी उनके अस्तित्व को एक-दूसरे में मिला देता है, किन्तु सभी संयोग चैतन्य से अत्यन्त भिन्न हैं – ऐसी भिन्नता के भान बिना जीव को कभी समभाव नहीं होता और सुख प्रकट नहीं होता। संयोग से अपनी भिन्नता जाने, तभी स्वयं चैतन्य भावरूप रहकर राग-द्वेष रहित समभाव रख सकता है और सुखी हो सकता है। इसप्रकार भेद-ज्ञान ही सुख का एक मात्र उपाय है। इसलिए हे भव्य ! तू अन्य लाख बातें छोड़कर, जगत के द्वन्द-फन्द त्यागकर, अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा का अन्तर में ध्यान कर। आत्मा का ज्ञान-ध्यान करने पर ही वीतरागी समभाव होगा और कर्म सहज टल जावेंगे। इसके बिना महाव्रतादि करने पर भी कर्मों से छुटकारा नहीं मिलेगा और किंचित् भी सुख नहीं मिलेगा। इसलिए कहा है :–

लाख बात की बात यहै निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग द्वन्द-फन्द नित आतम ध्याओ।।

आत्मा के स्वभाव की मीठी-मधुर भावना बारम्बार करने जैसी है। जैनधर्म के सब उपदेश का सार यही है कि अपने आत्मा को जगत के पदार्थों से भिन्न, तथा शुभाशुभ भावों से भी भिन्न, ज्ञान-आनन्दस्वरूप जानकर, उसको ही ध्याकर उसी में एकाग्र होना,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आ जाते हैं, यही मोक्षमार्ग है, यही मुमुक्षु का कर्तव्य है।

जैसे सम्यग्दर्शन के वर्णन में निःशकता आदि आठ अग कहे जा चुके हैं, वेसे ही सम्यग्ज्ञान के साथ भी ज्ञानाचाररूप आठ अंग होते हैं, उन आठ अंगों सहित सम्यग्ज्ञान की आराधना करना चाहिए। ज्ञान के आठ अंग निम्न प्रकार हैं :–

1. व्यंजनाचार :– जहाँ मात्र शब्द के पाठ का ही शुद्ध जानपना हो, उसे व्यंजनाचार कहते हैं।

2. अर्थाचार :– जहाँ केवल अर्थमात्र के प्रयोजन सहित शुद्ध जानपना हो, उसे अर्थाचार कहते हैं।

3. उभयाचार :– जहाँ शब्द और अर्थ दोनों में संधि सहित सम्पूर्ण जानपना हो, उसे उभयाचार कहते हैं।

4.कालाचार :– स्वाध्याय के लिए जो योग्य काल हो, उसका विवेक करके स्वाध्याय करना कालाचार है।

5. विनयाचार :– उद्धतपना छोड़कर श्रीगुरु के प्रति तथा शास्त्र के प्रति विनयपूर्वक ज्ञान की उपासना करना विनयाचार है।

6. उपधानाचार :– उपवास-एकासन आदि योग्य अनुष्ठान सहित ज्ञान की उपासना करना, अमुक तप की धारणा सहित ज्ञान की आराधना करना उपधानाचार है।

7. बहुमानाचार :– ज्ञान का अति आदर, ज्ञानदाता गुरु का भी विशेष आदर-बहुमान, और ज्ञान के हेतुभूत शास्त्रादि का भी बहुमान करना बहुमानाचार है।

8. अनिन्हवाचार :– जिन देव-गुरु-शास्त्र के निमित्त से स्वयं ज्ञान पाया, उन के उपकार को प्रसिद्ध करे, उनके नामादिक को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं छिपाना अनिन्हवाचार है।

इसप्रकार अष्ट प्रकार की आचार-शुद्धि से सम्यग्ज्ञान की आराधना करना।

आत्म ज्ञान बिना जीव ने अनन्त काल में जो कुछ भी पुण्य-पाप किया, वह सब धर्म के लिए निष्फल गया, उसमें सुख बिल्कुल नहीं मिला, मात्र दुःख ही मिला। अतः हे जीव ! तू अब तो चेत और उस पुण्य-पाप से पार ज्ञानस्वरूप आत्मा का विचार करके उसकी पहिचान कर। पुण्य-पाप से संसार मिलेगा, आत्मा नहीं मिलेगा, अतः वह सार नहीं है। इसलिए "लाख बात की बात" – ऐसा कहा, अर्थात् शुभाशुभ राग से पार आत्मा का जो शुद्ध ज्ञानानन्द स्वरूप है, उसको निश्चय से अन्तर में लाकर उसका अनुभव करो। ऐसा अनुभव ही मोक्ष के परम सुख का कारण है। अपना हित तो स्वसन्मुखता से होता है, परसन्मुखता से तो शुभ-अशुभ राग होता है, उसमें हित नहीं है। इसलिए पर से भिन्नता जान, और पर तरफ के शुभाशुभ की भी रुचि छोड़कर, अन्तर के ज्ञान स्वरूप में लीन होकर उसका ध्यान कर – यही जैनधर्म के सर्व शास्त्रों का सार है। भगवान के कहे हुए चारों अनुयोगों का रहस्य है। ऐसे निश्चय श्रद्धा ज्ञान बिना चारित्र कभी सच्चा नहीं होता, अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान बिना अन्य लाखों बातें करना असार है, मिथ्या है। लाखों बातों में सार भूत बात एक यही है कि आत्मा के शुद्धस्वरूप को पुण्य-पाप से पार पहिचानना, और पुण्य-पाप के फल में हर्ष-शोक त्यागना। पुनः-पुनः कहते हैं कि हे जीव ! तू काल गँवाये बिना ऐसे सम्यग्दर्शन ज्ञान का उद्यम कर। यदि आत्मज्ञान बिना अवसर खो देगा तो पछताने का पार नहीं रहेगा।

पं. बुधजनजी ने भी एक छहढाला लिखी है, उसका अनुसरण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करके पं. दौलतरामजी ने यह छहढाला ग्रन्थ बनाया है। यह छहढाला बहु प्रचलित है, सुगम रचना होने पर भी इसमें गंभीर भाव भरे हैं। इसमें शास्त्रानुसार सूक्ष्म तत्वों का वर्णन किया है। इसमें कहते हैं कि जीव आत्मा को जाने बिना शुक्ललेश्या (शुक्ल ध्यान नहीं किन्तु शुक्ललेश्या) करके अनन्त बार नवमी ग्रैवेयक तक गया परन्तु लेश भी सुख नहीं पाया। यद्यपि ग्रैवेयक में जाने वाले सभी जीव अज्ञानी नहीं होते, बहुत से तो ज्ञानी होते हैं, परन्तु अज्ञानी को संसार में सबसे ऊँचा स्थान नवमी ग्रैवेयक में जाने वाले जीव को बाहर में नग्न दिगम्बर दशा अवश्य होती है। जिसे पंचमहाव्रत का बराबर पालन हो, देव-शास्त्र-गुरु की व्यवहार-श्रद्धा सच्ची हो, शास्त्रज्ञान व्यवहार से सच्चा हो, शुक्ललेश्या हो – ऐसा जीव नवमी ग्रैवेयक में जाने की पात्रता रखता है।

अरे ! इतना कर-करके भी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त बार नवमी ग्रैवेयक में गया। (सम्यग्दृष्टि का तो अनन्त बार नवमी ग्रैवेयक में जाना होता ही नहीं, उसको तो एक-दो भव में संसार भ्रमण से छुटकारा हो जाता है) फिर भी उसे लेशमात्र भी सुख नहीं मिला। क्यों नहीं मिला ? क्योंकि सुख का सच्चा कारण उसके पास नहीं था। पंचमहाव्रत का शुभराग उसके पास था, परन्तु यह सुख का कारण थोडे ही है। उस शुभराग में आत्मा कहाँ आया ? आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान बिना सुख कभी नहीं मिलता। पंचमहाव्रत का शुभ राग भी सुख का कारण नहीं है, उस राग से पार आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र ही सुख का कारण है पुण्य और पाप ये दोनों तो विभाव हैं, इनका फल संसार ही है। आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र ही आत्मा का स्वभाव है, उससे ही भव का अन्त आता है। शुक्ललेश्या भिन्न वस्तु है और शुक्लध्यान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भिन्न वस्तु है। शुक्ललेश्या तो अज्ञानी के भी हो सकती है, किन्तु उससे भव का अन्त नहीं आता, जबकि शुक्लध्यान आत्मा की सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान उपरान्त चारित्र दशा में झूलते हुए मुनिवरों को होता है और उससे भव का अन्त आता है।

इसलिए शुभाशुभ राग से पार चैतन्य स्वरूप आत्मा को पहिचानना ही जैनधर्म के उपदेश का सार है। इसके सिवाय शुभाशुभ राग का फल तो संसार है, उसमें किंचित् भी सुख नहीं है। राग रहित आत्म स्वभाव का स्वयं संवेदन करे, अर्थात् जैसा स्वभाव है वैसा अनुभव में लेकर श्रद्धा-ज्ञान करे तब मोक्षमार्ग बने, तभी सुख हो और दुःख मिटे, इसके बिना लाखों उपाय करने पर भी दुख मिटकर सुख नहीं होगा।

ज्ञानस्वरूपी, अबन्ध स्वभावी आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र अबन्ध भावरूप हैं अर्थात् मोक्ष सुख के कारण हैं। निश्चय-रत्नत्रय मोक्ष के लिए नियम से कर्तव्य है – ऐसा नियमसार की तीसरी गाथा में कहा है–

जो नियम से कर्तव्य दर्शन-ज्ञान-व्रत यह नियम है ।
यह सार पद विपरीत के परिहार हित परिकथित है।।

इस नियमरूप रत्नत्रय में राग नहीं आता, राग का तो उसमें परिहार है, क्योंकि राग तो निश्चय-रत्नत्रय से विपरीत है। व्यवहार रत्नत्रय में जो शुभराग है यह नियम नहीं है, सारभूत नहीं है, मोक्ष के लिए कर्तव्य नहीं है ; मोक्ष के लिए तो करने योग्य अपने आत्मा के अनुभवरूप पर से अत्यन्त निरपेक्ष और राग रहित श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र हैं, वे ही सारभूत हैं, वे ही स्वानुभूति कहे जाते हैं। भगवान आत्मा स्वानुभूति से प्रसिद्ध होता है – ऐसा समयसार के प्रथम मंगल श्लोक में कहा है। उस स्वानुभूति में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तीनों समा जाते हैं, परन्तु राग उसमें नहीं समाता। भगवान आत्मा की प्रसिद्धि स्वानुभूति में होती है, राग में आत्मा प्रसिद्ध नहीं होता। अन्तर्मुख उपयोगरूप स्वानुभूति में भगवान आत्मा प्रसिद्ध होता है, अनुभव में आता है। ऐसी अनुभूति मंगलरूप है, मोक्ष का कारण है, अतः समयसार के प्रारम्भ में ही उसको स्मरण करके आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने मंगल किया है।

जैसे मेरुपर्वत की दक्षिण दिशा में अपना यह भरत क्षेत्र है वैसे ही उसकी पूर्व दिशा में विदेह क्षेत्र है, वहाँ सीमन्धर तीर्थंकर आदि भगवन्त विचर रहे हैं, इन्द्र और गणधर उनकी वाणी में आत्मा का स्वरूप सुनते हैं और स्वयं उसका अनुभव करते हैं। ऐसे सीमन्धर परमात्मा के पास यहाँ से कुन्दकुन्दाचार्य देव साक्षात् गये थे। वे इस भरत क्षेत्र के महान स्वानुभवी सन्त थे। उन्होंने समयसार आदि परमागम रचे हैं। इन ग्रन्थों में अन्तर के चैतन्य के अनुभव को स्पर्श करके आत्मा की अनुभूति का अलौकिक उपदेश किया है, चैतन्य का अपार वैभव समयसार में स्पष्ट करके दिखाया है। ऐसे ही पूर्वाचार्यों का अनुसरण करके पं. दौलतरामजी ने विक्रम संवत 1891 में इस छहढाला की रचना की है। उसमें कहते हैं कि अहो जीवो ! लाख बात की बात यह है कि तुम निश्चय से आत्मा को पुण्य-पाप से भिन्न जानकर अन्तर में ध्यावो, पुण्य-पापरूप संसार के द्वन्द-फन्द रहित आत्मा को ध्याओ। पुण्य-पाप से पार अनन्त चैतन्य शक्ति से परिपूर्ण स्वसंवेद्य आत्मा है, उसे अन्तर्मुख होकर वेदन में लो। पुण्य-पाप से वह आत्मा वेदन में नहीं आता, अपनी ही उपयोग शक्ति से वह स्वयं अपना प्रत्यक्ष स्वसंवेदन करता है, और ऐसे स्वसंवेदन में भगवान आत्मा अपने सच्चे स्वरूप में प्रसिद्ध होता है। इसलिए मुमुक्षु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को यही कार्य वास्तव में करने योग्य है, लाख उपाय से इसी को करना चाहिए।

अरे! मेरे करने योग्य काम तो आत्मा की पहिचान है, परन्तु मैंने वह तो आज तक की नहीं और राग में तथा उसके फल में ही सन्तोष मानकर रुका रहा। परन्तु जहाँ राग से पार चैतन्य की स्वानुभूति में आत्मा प्रकट हुआ वहाँ चैतन्य का परम सुख वेदन में आया। ऐसी आनन्दमय स्वानुभूति कैसे हो? कि राग के आश्रय से नहीं, पर के लक्ष से नहीं, अपने अन्दर गहरे जहाँ राग का प्रवेश नहीं, ऐसे भूतार्थ चैतन्य स्वभाव में घुसकर आत्मा की स्वानुभूति होती है।

यहाँ (सोनगढ़) जैन मंदिर में फागुन सुदी द्वितीया को सीमन्धर भगवान की प्रतिष्ठा हुई थी। कल उसकी वर्ष गांठ का दिवस है, और आज यहाँ आत्मा की स्वानुभूति से चैतन्य प्रभु को अपने में पधराने की बात है। अन्तर में आत्मा की पहिचान बिना भगवान की भी सच्ची पहिचान नहीं होती। पर से भिन्न, राग से पार, अपार गुण सम्पन्न आत्मा की श्रद्धा करना ही मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी है। जिसने ऐसी श्रद्धा की, उसने अनन्त भगवन्तों को अपने अन्तर में स्थापित करके मोक्ष सन्मुख मंगल प्रयाण किया। सम्यक् दर्शन में सिद्ध जैसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है, उसके बिना ज्ञान-चारित्र आदि सच्चे नहीं होते। शास्त्र का पढ़ना या शुभराग का आचरण आदि सब सम्यग्दर्शन के बिना निरर्थक हैं, सम्यग्दर्शन बिना वे सब मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र हैं अर्थात् संसार के ही कारण हैं, मोक्ष के कारण नहीं हैं। इसलिए कहते हैं कि हे भाई! तू ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को तथा सम्यग्ज्ञान को उद्यम से धारण कर। इस अवसर में लाख-करोड़ उपाय बनाकर भी, बाहर की अन्य सभी बातों को छोड़कर अन्तर में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपनी आत्मा की दरकार करके, सच्ची श्रद्धा-ज्ञान उत्पन्न कर तो तुझे अपूर्व आनन्द की उपलब्धि होगी।

अधिक क्या कहें ! लाखों बातों का सार इतना ही है कि हे सुज्ञ पुरुषो ! अनन्त काल तो सम्यग्दर्शन बिना बीत गया, किन्तु जो हुआ सो हुआ, अब इस अवसर में सम्यग्दर्शन बिना अल्पकाल भी मत गँवाना। वीर प्रभु के जिन शासन में ऐसा अवसर पाकर अब तो सम्यग्दर्शन प्रकट करो। शीघ्र चेत जाओ, दुनिया को प्रसन्न करने के लिए समय मत बरबाद करो। अपनी आत्मा क्या है उस तरफ लक्ष करके उसकी आराधना करो, उसका सम्यक् अनुभव करो। सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति का यह अवसर है, उसी उत्तम रत्न से मोक्ष प्राप्त होगा। अनन्त काल तो दुख में गया। 'गई सो गई' परन्तु अब तो सम्यग्दर्शन करके आत्मा के सुख का अनुभव करो। अनन्त जीव ऐसा अनुभव करके मोक्ष गए हैं, तुम भी आत्मानुभव करके मोक्ष प्राप्त करो।

शरीर और कर्म की तो कथा ही क्या ? वे तो अजीव हैं, परद्रव्य हैं, जीव से भिन्न हैं, शुभाशुभराग भी चैतन्य स्वभाव से पार है, भिन्न है, और अल्प विकास वाली अधूरी पर्याय जितना सम्पूर्ण आत्मा नहीं है। आत्मा तो पूर्ण स्वभाव से भरा है, उसमें से ही केवलज्ञानादि प्रकट होते हैं, वही उसका पूरा कार्य है। इसलिए पर की, विकार की और अल्प पर्याय के भेद की दृष्टि छोड़कर, पूर्ण स्वभाव से भरे हुए भगवान के सन्मुख होकर उसकी श्रद्धा-ज्ञान करना ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है, वही आनन्द रूप है, वही मोक्षमार्ग है। पूर्णानन्दी प्रभु भगवान आत्मा स्वयं विराज रहा है, उसको भजते ही वह मोक्षमार्ग और मोक्ष प्रदान करता है। अनन्त जीव अपने अन्तर में उसको ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भज-भजकर सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए और जो प्राप्त होंगे वे भी उसकी ही सन्मुखता से पावेंगे। सम्यग्दर्शन के लिए तीन काल का नियम है और सभी जीवों पर लागू पड़ता है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता और सम्यग्दर्शन के बिना मोक्ष नहीं मिलता। अतः हे भव्य जीव! सर्वप्रथम आत्म सन्मुख होकर सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान प्रकट करो।

अहो! देखो तो सही! सन्त कैसे प्रेम से आत्महित के लिए प्रेरित कर रहे हैं। अरे! ऐसे आत्मा का प्रेम लाकर जीव ने कभी उसकी बात सुनी नहीं। सुना तो वास्तव में तब कहा जाय जबकि अपने में वैसा भाव प्रकट करके अन्तर में अनुभव करे। चैतन्य की बात सुनने पर भी जीव विषय-कषाय के वेदनरूप भाव में ही रुका रहे, अर्थात् बन्ध भाव में ही रुका रहे और अबन्धरूप चैतन्यभाव प्रकट न करे, उसने एकत्व विभक्त आत्मा की बात वास्तव में सुनी नहीं, उसने तो काम-भोग-बन्ध की विकथा ही सुनी है, उसका ही प्रेम किया है। अनादि काल से जीव ने यही किया है। पर से भिन्न होकर चैतन्य के एकत्व में जो आया उसने ही अपूर्व भाव से एकत्व स्वभाव की बात यथार्थ सुनी है, और उसी ने अनुभवी – ज्ञानी की सच्ची सेवा की है। इसके बिना मात्र शुभभाव करने को तो सम्यग्ज्ञानी की सेवा भी नहीं कहते, और 'ज्ञान' की सेवा नहीं की उसने तो राग का ही सेवन किया है। इसलिए कहते हैं कि पुण्य-पाप से पार चैतन्य तत्व को पहिचानो – यही सबका सार है।

सम्यग्दर्शन पर्याय में निमित्त का, राग का या भेद का आश्रय नहीं है, वह तो एक अखण्ड ज्ञायक तत्व का आश्रय करके उसमें एकता करता है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने शुद्धात्मा की प्रतीति कभी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं छोड़ता, और एक समय भी रागादि अशुद्ध भावरूप से अपने को नहीं अनुभवता। ऐसा सम्यग्दर्शन और भेद-ज्ञान जैन धर्म का सार है। इसमें ही वीतरागता होती है। वीतरागता ही शास्त्रों का तात्पर्य है। आत्मा का शुद्धस्वरूप सर्व पर से अत्यन्त भिन्न है, उसमें वीतरागता भरी है, राग का अंश भी चैतन्य में नहीं है। ऐसे चैतन्य स्वरूप की अनुभूति बिना अनन्त बार बहुत राग कर करके क्या पाया ? अकेला दुःख पाया, लेश भी सुख नहीं पाया। इसलिए अब दुख से परिमुक्त होकर सुखी होने के अर्थ हे जीवो ! तुम जगत के सभी द्वन्द-फन्द छोड़कर निजात्मा का ध्यान करो। कब ध्यावें ? नित्य ध्यावो, एक क्षण भी आत्मा को पुण्य-पाप वाला मत ध्यावो। सदा आत्मा को पुण्य-पाप से पार चैतन्य स्वरूप ही ध्यावो, यही मुमुक्षु का कर्त्तव्य है। 'शुभराग नित्य करो' ऐसा नहीं कहा, अपितु राग रहित शुद्धात्मा को 'नित्य ध्यावो' ऐसा कहा है। रागरूप से आत्मा को एकक्षण भी मत ध्यावो। चैतन्य और राग एकरूप भासित होना ही संसार का मूल है। पुण्य-पाप का भाव होते समय भी अपने शुद्धात्मा की श्रद्धा-ज्ञान नहीं छूटते, सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान तो पुण्य-पाप से छूटे ही हैं। आत्मा के ध्यान से ऐसे सम्यग्दर्शन सम्यक्ज्ञान प्रकट करके, धर्मी उनको नित्य ध्याता है। यही श्रावकों का प्रथम कर्तव्य है। श्रावक को, धर्मी गृहस्थ को भी श्रद्धा-ज्ञान में ध्येयपने निरन्तर अपना शुद्धात्मा वर्तता है। शुद्धात्मा का ऐसा धर्मध्यान गृहस्थ को भी होता है।

जगत के द्वन्द-फन्द को तोड़ने के लिए कहा, और पुण्य-पाप के फल में हर्ष-शोक छोड़ने के लिए कहा, तो जगत के उस द्वन्द-फन्द को कौन छोड़े ? कि पुण्य-पाप से पार चैतन्य मात्र मैं हूँ – ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसने अन्तर में जाना हो, वही अपने आत्मा को ध्याकर संसार के फन्दे से छूट जाता है। जिसको पुण्य के फल में मिठास लगे, शुभराग में रस लगे, वह जीव संसार के फन्दे को नहीं तोड़ सकता।

भगवान! तेरे आत्मा में ही सिद्ध भगवान बैठा है, केवलज्ञान तेरे आत्मा में बैठा है, किसी दूसरे के पास से तुझे क्या लाना है? चैतन्य तत्त्व का आश्रय करने पर तू स्वयं सादि-अनंत काल तक केवलज्ञान और सिद्धदशारूप परिणमन करे – ऐसा ही तेरा अचिन्त्य स्वभाव है। अब तुझे राग के पास से या किसी अन्य के पास क्या लेना? अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द, अनन्त केवलज्ञान अनन्त सम्यक्त्व – ऐसा सामर्थ्य तेरे गुण में ही है, ऐसे अनन्त गुणों का पिण्ड तू महान चैतन्य वस्तु है। तुझमें राग का अंश भी नहीं है। अन्तर्मुख होकर ऐसे परम महिमावन्त आत्मवस्तु को श्रद्धा-ज्ञान में लेना ही भव से पार होने का उपाय है।

पुण्य-पाप का आलम्बक ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं, चैतन्य स्वभावरूप सत्ता का अवलम्बन लेने वाला ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। पुण्य-पाप तो संसार का फन्द है, उसे तो चैतन्य के ध्यान से तोड़ना है। चैतन्य स्वरूप आत्मा को जाना तब रागादि के फन्द से ज्ञान छूटा कि 'यह पुण्य-पाप मैं नहीं'। स्वपूर्वक पर का ज्ञान ही प्रमाण ज्ञान है, ऐसे भेद-ज्ञान से सम्यग्ज्ञान का आराधन करो। सम्यग्दर्शन के साथ ऐसा सम्यग्ज्ञान होता है, उसको सम्यग्दर्शन के बाद भी ठेठ केवलज्ञान तक आराधो। पुण्य-पाप से सदा भिन्न ज्ञान की आराधना करो। वह तो मोक्षमार्ग है और वही द्वादशांग का सार है। वही सच्चे सुख का एक मात्र उपाय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्ज्ञान पूर्वक चारित्र का उपदेश

सम्यग्दर्शन-ज्ञान पूर्वक ही चारित्राराधना होती है। इसीलिए सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के पश्चात् अब चारित्र का वर्णन करेंगे। पुरूषार्थसिद्धयुपाय में भी कहा है :–

न हि सम्यग्व्यपदेशं चरित्रमज्ञानपूर्वकं लभते।
ज्ञानान्तरमुक्त चारित्राराधनं तस्मात्।।

अज्ञान पूर्वक होने वाले चारित्र को सच्चा चारित्र नहीं कहते इसलिए चारित्र की आराधना सम्यग्ज्ञान के बाद ही कही गई है।

चारित्र के मुख्य दो भेद कहे हैं – देशचारित्र और सकलचारित्र। पाँचवे गुणस्थानवर्ती श्रावक को देश चारित्र होता है, तथा छठवें-सातवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज को सकल चारित्र होता है। सकल चारित्र का वर्णन छठवीं ढाल में करेंगे। यहाँ 10 वें से 13 वें छन्द तक देश चारित्र का वर्णन करते हैं।

सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि, दृढ़ चारित्र लीजै।
एकदेश अरू सकलदेश, तसु भेद कहीजै।।
त्रस हिंसा को त्याग, वृथा थावर न संहारै।
परवध कार कठोर निंद्य, नहिं वचन उचारै।। १०।।
जल मृतिका बिन और, नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज बनिता बिन सकल, नारि सौं रहैं विरत्ता।।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दश दिशि गमन प्रमान ठान, तसु सीम न नाखैं।। ११।।
ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान, ठान अन सकल निवारा।।
काहू की धनहानि, किसी जय हार न चिन्तैं।
देय न सो उपदेश, होय अघ बनज कृषी तैं।। १२।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै।।
राग–द्वेष करतार, कथा कबहूँ न सुनीजै।
और हु अनरथदंड हेतु अघ, तिन्है न कीजै।। १३।।

श्रावक के निम्नानुसार कुल 12 व्रत हैं :–

पाँच अणुव्रत – अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाणव्रत।

तीन गुणव्रत – दिग्व्रत, देशावकाशिक व्रत, अनर्थदण्ड परित्यागव्रत।

चार शिक्षाव्रत – सामायिक, प्रोषध, भोगोपभोग परिमाण और अतिथि संविभाग रूप वैयावृत।

इन बारह व्रतों में से पाँच अणुव्रतों और तीन गुणव्रतों का वर्णन इन चार छन्दों में है। चार शिक्षाव्रतों का वर्णन बाद में करेंगे।

ये व्रत श्रावक को पाँचवें गुणस्थान में होते हैं अर्थात् सम्यग्ज्ञान पूर्वक ही होते हैं। ज्ञान के बिना व्रत सच्चे नहीं होते, अतः विशेषरूप से कहा कि "सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि दृढ़ चारित लीजे" सम्यग्ज्ञान उपरान्त जहाँ ऐसी वीतरागता हुई कि अप्रत्याख्यान सम्बन्धी क्रोधादि कोई कषाय भी नहीं होती और शेष कषायें भी मन्द हैं, मर्यादित हैं जिसके अन्दर की वीतरागी शान्ति विशेष बढ़ गई है – ऐसी दशा वाले श्रावक को पाँचवाँ गुणस्थान होता है और उसको अहिंसा व्रत होते हैं, उसका यह वर्णन है।

अरे ! श्रावकपना किसे कहा जाय ? सर्वार्थसिद्धि के देवों की अपेक्षा भी जिसकी शान्ति अधिक है। ऐसी दशा अन्तर में आत्मा के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुभव बिना नहीं हो सकती। अतः हे जीवो ! प्रथम आत्मा का सम्यग्ज्ञान करके फिर चारित्र दशा का आराधन करो। मुनिपना हो सके तो मुनिपना प्रगट करो, यदि अभी मुनिपना न हो सके तो श्रावक के चारित्र का आचरण करो – देशव्रत का पालन करो।

मोक्षमार्ग में अर्थात् अरहन्त भगवान के मार्ग में जो चारित्र है वह सम्यग्ज्ञान सहित ही होता है। समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार की 49 वीं गाथा में "संज्ञस्य चारित्रम्" अर्थात् सम्यग्ज्ञानी का चारित्र ऐसा कहकर सम्यग्ज्ञानपूर्वक हिंसादि से विरति को चारित्र कहा है। अज्ञानी के व्रतादि आचरण को चारित्र नहीं कहा है। पुरुषार्थसिद्धयुपाय ग्रन्थ में सम्यक्चारित्र के प्रकरण में ही श्री अमृतचन्द्र स्वामी कहते हैं कि कैसे जीव को सम्यक् चारित्र होता है ? कि जिसने दर्शन मोह का नाश किया है और सम्यग्ज्ञान से तत्त्वार्थ को जाना है, तथा जो सदा अकम्प दृढ़ चित्त वाला है – ऐसे जीव को सम्यक् चारित्र होता है। अज्ञानपूर्वक होने वाले आचरण को सम्यक् चारित्र नहीं कहते, इसीलिए सम्यग्ज्ञान के बाद ही चारित्र का आराधन कहा है। कषाय के अभावरूप आचरण ही "आत्मरूप" है और वही चारित्र है। शुभराग आत्मा का रूप नहीं है, राग के अभावरूप वीतरागी चारित्र ही आत्मा का रूप है। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र इन तीनों को आत्मरूप कहकर उनमें से राग रूप परभावों को निकाल दिया है। ऐसे आत्मस्वरूप की पहिचान के बाद ही श्रावक या मुनि का चारित्र होता है।

रागादि से भिन्न अपना ज्ञानस्वरूप जिसने जाना है – ऐसे जीव का अपने त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव में चर्या करना ही चारित्र है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसमें परम वीतरागंता के प्रभाव से परम साम्यभाव होता है और उसके साथ बाह्य प्रवृत्ति में भी हिंसादि के त्यागरूप उज्ज्वल तो होती है। पाँचवें गुणस्थान में श्रावक को अनन्तानुबंधी और अप्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया-लोभ तो होता ही नहीं है। ऐसी शुद्धि की भूमिका में स्थूल हिंसादि के पाप परिणाम स्वतः नहीं होते, उसका नाम अहिंसादिव्रत है, और जो राग-द्वेषादि शेष रह गए हैं वे भी मर्यादा में आ गए हैं। सर्वार्थसिद्धि के देव की अपेक्षा तिर्यञ्च गति में रहने वाले पाँचवें गुणस्थानवर्ती श्रावक के परिणाम बहुत उज्ज्वल होते हैं और सर्वार्थसिद्धि के देव की अपेक्षा वह तिर्यञ्च विशेष सुखी है।

श्रावक के चारित्र में बारह व्रत होते हैं, उनके तीन भाग हैं – पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत। इसके उपरान्त उसको सदैव सल्लेखना की – समाधि मरण की भावना होती है। अहिंसादि पाँच अणुव्रत और दिग्व्रतादि तीन गुणव्रत का वर्णन इन चार छन्दों में है। दिग्व्रत, देशावकाशिकव्रत और अनर्थदण्डत्यागव्रत यह तीनों अहिंसादिव्रत की पुष्टि करने वाले हैं – गुण करने वाले हैं – रक्षा करने वाले हैं अतः इन्हें "गुणव्रत" कहा जाता है तथा सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण और अतिथि संविभागरूप वैयावृत्य – ये चार व्रत मुनिपने के अभ्यासरूप हैं, मुनिपने की शिक्षा देने वाले हैं इसलिए इन्हें "शिक्षाव्रत" कहा जाता है।

१. **अहिंसा-अणुव्रत** :– आत्मानुभव उपरान्त अप्रत्याख्यान सम्बन्धी कषायों का भी अभाव होने से जिसकी आत्मा की शान्ति विशेष बढ़ गई है, ऐसे पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक को संकल्प पूर्वक होने वाली त्रसहिंसा का परिणाम नहीं होता। जिसमें सीधी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

त्रसहिंसा होती हो ऐसी प्रवृत्ति में वह नहीं पड़ता, त्रसहिंसा वाला भोजन वह नहीं खाता।

यद्यपि सामान्य गृहस्थ अथवा सज्जन आर्य मनुष्य को भी त्रसहिंसा के परिणाम नहीं होंते परन्तु इस वृत्ति श्रावक को तो उसका नियमपूर्वक त्याग होता है। इसी तरह वह स्थावर जीवों की भी बिना प्रयोजन हिंसा नहीं करता, उनकी हिंसा से भी यथा शक्ति बचने की सावधानी रखता है। विरोधी हिंसा अर्थात् किसी दुष्ट जीव द्वारा या शत्रु द्वारा धर्म के ऊपर, राष्ट्र के ऊपर अथवा स्त्री पुत्रादि के ऊपर आक्रमण हो तो ऐसे प्रसंगों पर स्व रक्षा के अर्थ, विवश होकर सामने वाले जीव को मारने का प्रसंग आ पड़े तो ऐसी हिंसा का त्याग इस श्रावक को नहीं होता। उसमें भी सामने वाले की हिंसा का अभिप्राय उसको नहीं होता – मात्र स्व रक्षा का ही अभिप्राय होता है। ऐसी हिंसा के परिणाम के समय भी अनन्तानुबंधी या अप्रत्याख्यान संबंधी राग-द्वेष उसको नहीं होते अर्थात् दो कषाय के अभाव रूप वीतरागी शुद्धता उसे सदा बनी रहती है और इतनी शुद्धता रखते हुए जो हिंसादि परिणाम होते हैं वे अतिअल्प होते हैं, स्थूल हिंसादि के परिणाम तो उसको होते ही नहीं – ऐसी दशा का नाम अहिंसा अणुव्रत है। सम्यग्दर्शन ज्ञान प्रकट करके धर्मी जीव को ऐसे अहिंसाव्रत का पालन योग्य है।

श्रावक को "विरोधी हिंसा" होती है, उसका अर्थ यह नहीं है कि वह हिंसा करने जैसी है। श्रावक तो उसे भी छोड़ने योग्य मानता है, परन्तु अभी उस कषाय के अभाव योग्य शुद्धि नहीं प्रकटी इसलिए वैसे परिणाम आ जाते हैं – इन्हें भी छोड़कर सम्पूर्ण अहिंसा रूप मुनिदशा कब हो -- ऐसी भावना श्रावक को होती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

२. सत्य अणुव्रत :– वस्तु का स्वरूप जिसप्रकार सत् है उसीप्रकार बराबर जाने तभी सत्यव्रत हो सकता है। इस आत्मा को ईश्वर ने बनाया है, अथवा आत्मा सर्वथा क्षणिक है – ऐसे असत्य मानने वाले को सत्यव्रत नहीं होता। सम्यग्ज्ञान पूर्वक ही सत्यव्रत होता है। अनन्तानुबंधी की चार और अप्रत्याख्यान की चार, इसप्रकार आठ कषायों का अभाव होकर जब विशेष शान्ति प्रकट हुई, तब श्रावक को स्थूल असत्य के परिणाम नहीं होते, उसका नाम सत्याणुव्रत है। जिससे दूसरे को दुःख हो, प्राणों का घात हो – ऐसे वचन वह नहीं बोलता। ऐसा सत्य भी नहीं बोलता जिससे दूसरे की हिंसा हो।

३. अचौर्य अणुव्रत :– सम्यग्दृष्टि श्रावक ज्ञानानन्द स्वरूप स्व-द्रव्य के अलावा किसी भी पर द्रव्य को अपना नहीं मानता, तथा दिये बिना पर की वस्तु के ग्रहण करने के भाव उसके नहीं होते। अचौर्य अणुव्रत धारी श्रावक मार्ग में पड़ी दूसरे की वस्तु को नहीं उठाता।

४. ब्रह्मचर्य अणुव्रत :– ब्रह्मस्वरूप आत्मा के सुख का अनुभव जिसको बढ़ गया है ऐसा श्रावक अपनी विवाहित स्त्री के अतिरिक्त जगत की समस्त स्त्रियों से विरक्त होता है, उनके साथ अब्रह्म का विकल्प भी उसे नहीं आता। अपनी स्त्री में भी तीव्रासक्ति नहीं होती तथा भोगों में सुख तो वह मानता ही नहीं – ऐसा चौथा अणुव्रत है। पाँचवें गुणस्थान से पहले भी अभ्यास रूप से ब्रह्मचर्यादि का पालन होता है, परन्तु व्रतधारी श्रावक को तो ये नियमरूप होते हैं। वह मन-वचन-कार्य से उसमें दोष नहीं लगने देता। इस अणुव्रत को "स्वदार-सन्तोषव्रत" भी कहते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

५. परिग्रह–परिमाण अणुव्रत :– ज्ञानी ने श्रद्धा-ज्ञान में तो समस्त परद्रव्य से अपनी आत्मा की भिन्नता जानी है, उसके बाद शुद्धता बढ़ने पर राग के त्याग से धन-धान्य-वस्त्र-सोना आदि वस्तुओं के परिग्रह की मर्यादा हो जाती है, उसका नाम परिग्रह परिमाण है। इस व्रत का धारक श्रावक अपनी भूमिका तथा अपनी सामर्थ्य विचार कर जीवन भर अमुक परिग्रह की ही मर्यादा करता है, उससे अधिक की वृत्ति ही उसके नहीं होती अर्थात् अन्य सबके प्रति अत्यन्त निस्पृहभाव हो जाता है।

इसप्रकार अहिंसादि पाँच अणुव्रत कहे। श्रावक को दो कषाय के अभावरूप शुद्धता होने पर ये पाँचों अणुव्रत एक साथ होते हैं। इन व्रतों को पुष्ट करने वाली प्रत्येक व्रत की पाँच-पाँच भावनाओं का वर्णन मोक्षशास्त्र की टीका में विस्तार से है। भगवान के मार्ग में प्रत्येक प्रकार के सूक्ष्म परिणामों का वर्णन किया है, ऐसा वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं है। सर्वज्ञदेव ने जहाँ-जहाँ त्रस जीव कहे हैं, अण्डा वगैरह में पंचन्द्रिय जीव कहा है, अनछने पानी में क्षण–क्षण त्रस जीवों की उत्पत्ति कही है – उन सबको जानकर ही त्रस जीवों की हिंसा से बचा जा सकता है, अर्थात् अहिंसा आदि का सूक्ष्म स्वरूप अरहन्तदेव के मार्ग में ही है। अरहन्तदेव के मार्ग की जिसे खबर नहीं उससे अहिंसादि का सच्चा पालन भी नहीं हो सकता इसलिए वास्तव में सम्यग्ज्ञानपूर्वक ही सच्चा चारित्र होता है। ज्ञान बिना व्रतादि को "बालव्रत" कहते हैं।

जीवों का जीवन-मरण तो उनके आयु कर्म के आधीन है, परन्तु व्रती जीव को कषाय का अभाव होने से वैसे हिंसादि का आरम्भ-परिणाम नहीं होता। किसी आरम्भ में एक भी त्रस जीव मरता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दिखाई पड़े तो व्रतधारी श्रावक वैसा आरम्भ नहीं करता। कीड़ी मात्र के मारने से विपुल धन मिलता हो तो भी, जीवन के लोभ से भी, धर्मी जीव वैसी त्रसहिंसा का संकल्प नहीं करता। मैं इसे मारूँ – ऐसा विकल्प भी उसके मन में नहीं आता, तब वह अहिंसाव्रती कहा जाता है।

कोई जीव (बछड़ा इत्यादि) अति दुःख से पीड़ित हो वहाँ उसे दुःख से शीघ्र छुड़ाने के लिए गोली आदि से मार देने का विचार करना भी त्रसहिंसा ही है; ऐसे परिणाम धर्मी के नहीं होते। मात्र शरीर छूट जाने से कोई दुःख मुक्त नहीं हो जाता, क्योंकि यह जीव कहीं शरीर जितना ही नहीं है, यह शरीर छोड़कर दूसरे भव में वह अपने पाप-पुण्यानुसार दुःख-सुख भोगता है। इसलिए उसको मारने का विचार आर्य जीव को नहीं होता।

इसीप्रकार सर्पादिक हिंसक जीव जीवित रहेंगे, तो दूसरे बहुत से जीवों को मारते रहेंगे, अतः उन सर्पादिक को मार देना उचित है – ऐसा विचार भी तत्व से विरुद्ध है। धर्मी को ऐसा विचार नहीं होता। कोई सिंहादिक हमला करे वहाँ रक्षा के लिए उसका प्रतिकार करना दूसरी बात है, यद्यपि वह भी हिंसा तो है ही परन्तु किसी जीव को मार डालने की बुद्धि धर्मी जीव को नहीं होती त्रस जीव की हिंसा से उत्पन्न औषधादिक का प्रयोग धर्मी जीव प्राण जाने पर भी नहीं करता। त्रस हिंसा करनी पड़े ऐसी विद्या (वास्तव में कुविद्या) वह नहीं पढ़ता।

बाह्य क्रिया सम्बन्धी कितने प्रकारों का वर्णन करें ? अन्दर में कषाय की उत्पत्ति ही न हो, उसका नाम अहिंसा हैं, और जहाँ कषाय नहीं वहाँ जीवहिंसा की प्रवृत्ति भी नहीं होती। पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अमृतचन्द्रदेव ने जिनागम का महान सिद्धांत बताते हुए लिखा है :–

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेव उत्पत्तिः हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।।44।।

आत्मा में रागादिभाव की उत्पत्ति न होना अर्थात् वीतराग भाव होना वास्तव में अहिंसा है, और रागादिभावों की उत्पत्ति होना हिंसा है – यह जिनागम का सार है।

बाहर में कदाचित् दूसरे जीवों की हिंसा न हो तो भी इस जीव को जितने अंश में राग हुआ उतनी तो हिंसा ही है, क्योंकि रागादि कषाय से उसने प्रथम अपनी आत्मा की हिंसा तो कर ही ली और रागादि की उत्पत्ति न होना, वही अहिंसा है। जिनागम में कथित इस अहिंसा तथा हिंसा के महासिद्धांत को लक्ष में रखकर ही समस्त जिनागम का अर्थ समझना चाहिए। भगवान के आगम में राग को हिंसा ही कहा है फिर वह राग चाहे जिस जाति का हो, शुभ हो अथवा अशुभ, परन्तु है वह हिंसा ही, और जब उसको हिंसा कहा तो फिर उस हिंसा में धर्म नहीं हो सकता।

चैतन्य में लीनता होने पर ऐसा आनन्द होता है कि राग की उत्पत्ति ही नहीं होती – ऐसी धर्मी जीव की अहिंसा है, और ऐसी वीतरागी अहिंसा ही परम धर्म है। परमधर्म रूप ऐसी अहिंसा वीतरागी-जिनमार्ग में ही होती है। राग में धर्म मानने वाले को अहिंसा धर्म कभी नहीं हो सकता।

जैनशासन में जिनवरदेव ने मोक्ष के कारण रूप अहिंसाधर्म का सच्चा स्वरूप अलौकिक रीति से समझाया है, उसका सुन्दर वर्णन "अहिंसा परमोधर्म" नामक पुस्तिका में है। तत्त्व जिज्ञासुओं को विशेष उपयोगी होने से उसे यहाँ दिया जा रहा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

"अहिंसा परमोधर्मः" अर्थात् भगवान महावीर का इष्ट उपदेश।

अहिंसा धर्म सारे जगत को प्रिय है, परन्तु उसका सच्चा स्वरूप समझने वाला तो जगत में कोई विरला ही है। उस अहिंसा का सच्चा स्वरूप समझे बिना उसका पालन नहीं हो सकता, इसलिए अहिंसा प्रेमियों को उसका सच्चा स्वरूप समझ लेना चाहिए। भगवान महावीर के शासन में परम अहिंसा धर्म का सच्चा स्वरूप समझाया है।

सर्व प्रथम अहिंसा का अर्थ समझना आवश्यक है।

महावीर प्रभु के शासन में परम अहिंसा धर्म उसको कहा है कि जिसके सेवन से अवश्य ही मोक्ष प्राप्ति हो और आत्मा के स्वरूप का घात न हो, तथा हिंसा उसे कहते हैं कि जिससे आत्मा का स्वभाव घाता जाए और संसार में भव करना पड़े (वह भव सुगति हो अथवा दुर्गति हो)। इस तरह अहिंसा तो मोक्ष का कारण है और हिंसा संसार का कारण है। क्योंकि अहिंसा वीतरागभाव रूप है, हिंसा राग रूप है।

संसार में गतियों के मुख्य दो प्रकार हैं :–

हिंसा के भी दो प्रकार हैं :–

1. शुभभाव जनित अर्थात् प्रशस्त कषायरूप हिंसा जो कि स्वर्गादिक का कारण है।

2. अशुभभाव जनित अर्थात् अप्रशस्त कषायरूप हिंसा जो कि नरकादि दुर्गति का कारण है।

इसप्रकार जीव के अकषाय और सकषाय (वीतराग या रागादि) परिणाम के साथ अहिंसा और हिंसा का सम्बन्ध है किन्तु पर जीव के जीवन या मरण के साथ इस जीव की अहिंसा या हिंसा का सम्बन्ध नहीं है।

पर जीव का जीवन या मरण उसकी आयु के अनुसार होती है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परन्तु जिस जीव को अकषाय रूप वीतराग भाव है वह अहिंसक है, और जिस जीव को सकषायरूप रागादि भाव हैं वह हिंसक है। यह भगवान वीरनाथ द्वार कथित अहिंसा – हिंसा का महान सिद्धान्त है। रागादिरूप हिंसा वह अधर्म है, और वीतराग भाव रूप अहिंसा परम धर्म है। अहिंसा धर्म का ऐसा उपदेश सर्वजीवों के लिए हितकारी होने से यही 'इष्ट उपदेश' है, यही भगवान महावीर का उपदेश है।

वीतरागभावरूप अहिंसा इष्ट फल वाली है, और मोक्ष इष्ट है। रागादिभावरूप हिंसा अनिष्ट फल वाली है, और संसार अनिष्ट है।

ऐसी अहिंसा तथा हिंसा का स्वरूप अधिक स्पष्ट रीति से समझने के लिए यहाँ एक उदाहरण दिया जा रहा है :–

एक जंगल में चालीस लुटेरे रहते थे। वे क्रूर परिणामी और मांसाहारी थे। वे जंगल में शिकार की तलाश में घूमते रहते थे। इतने में ही एक धर्मात्मा मुनि उस जंगल में आए। उन आत्मज्ञानी और वीतरागभाव में मस्त सन्त को उन दुष्टों ने देख लिया। वे लुटेरे उस सन्त को मारकर उसका मांस खाने के भाव से उनके पीछे पड़ गए। वे धर्मात्मा सन्त तो उपसर्ग समझकर शान्ति से ध्यान में विराज गए। लुटेरे उनको पकड़कर मारने की तैयारी में ही थे किन्तु इतने में एक राजा उधर से निकला। राजा सज्जन और वीर था। मुनि और लुटेरों को देखकर वह सारी परिस्थिति समझ गया। दुष्ट लुटेरों के पंजे से मुनि की रक्षा करने के लिए उसने लुटेरों को बहुत समझाया कि इन निर्दोष धर्मात्मा को हैरान मत करो, परन्तु वे मांस लोभी दुष्ट लुटेरे किसी भी प्रकार नहीं माने और मुनि को मारने लगे। तब राजा से नहीं रहा गया और उसने मुनि रक्षा के लिए लुटेरों का सामना किया। वे चालीस लुटेरे भी एक साथ राजा पर टूट पड़े, परन्तु बहादुर राजा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ने अपने अतुल पराक्रम से सभी लुटेरों को मारकर मुनि की रक्षा की। लुटेरे न तो मुनि को ही मार सके और न उस राजा को ही मार सके।

अब हमें यहाँ दो बातों पर विचार करना है :–

1. राजा द्वारा तो चालीस लुटेरों की हत्या की गई।

2. लुटेरों के द्वारा एक भी मनुष्य की हिंसा नहीं हुई।

तो अब उन दो में से अधिक हिंसक किसे माना जाए? राजा को या लुटेरों को? तथा मुनिराज को हिंसा हुई या अहिंसा?

निश्चित ही आप लुटेरों को ही हिंसक कहेंगे और राजा को हिंसक न कहकर उसकी प्रशंसा ही करेंगे। तथा मुनिराज के लिए तो यही कहेंगे कि वे न हिंसक थे न अहिंसक।

चालीस मनुष्य मारे गए तथापि उस राजा को अल्प हिंसक भी नहीं माना जाता, और कोई मनुष्य न मरने पर भी उन लुटेरों को हिंसक माना गया; क्या यह ठीक है? गहराई से विचार करने पर इन प्रश्नों का सही उत्तर इसप्रकार होगा।

लुटेरे तीव्र हिंसक थे, राजा अल्प हिंसक था और मुनिराज अहिंसक थे। क्योंकि बहुत जीव मरे इसलिए बहुत हिंसा, और अल्प जीव मरे इसलिए अल्प हिंसा – ऐसा नियम नहीं है, यदि ऐसा होता तो राजा ही बड़ा हिंसक ठहरता, किन्तु ऐसा नहीं है। तब फिर कैसा है? जहाँ बहुत कषाय वहाँ बहुत हिंसा जहाँ अल्पकषाय वहाँ अल्प हिंसा, और जहाँ अकषायरूप वीतरागभाव वहाँ अहिंसा – ऐसा सिद्धान्त है।

लुटेरों ने मुनि को मारने के भाव रूप तीव्र कषाय भाव किया इसलिए उन्हें बहुत हिंसा हुई। राजा ने अल्प कषाय की इसलिए उसे अल्प हिंसा हुई। यद्यपि उसको मुनि को बचाने का शुभभाव था,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परन्तु उसने जितनी कषाय की उतनी तो हिंसा ही हुई, क्योंकि कषाय स्वयं हिंसा है।

जिसने राग-द्वेष नहीं किया ऐसे मुनिराज परम अहिंसक थे, क्योंकि वीतरागभाव ही अहिंसा है, और रागादिभाव ही हिंसा है।

हिंसा-अहिंसा के सम्बन्ध में अबाधित नियम पहले ही पुरुषार्थसिद्धयुपाय के श्लोक 44 द्वारा प्रतिपादित किया जा चुका है। उसका विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है :–

जहाँ कषाय सहित योग से द्रव्य-भावरूप प्राणों का घात है वहाँ निश्चित हिंसा है।

जिस सत्यपुरुष को योग्य आचरण है और रागादि कषाय का अभाव है, उसको मात्र प्राणघात से कभी हिंसा नहीं होती।

जहाँ रागादि कषायवश प्रमादवृत्ति है, वहाँ जीव मरें या न मरें तथापि हिंसा निश्चित है। क्योंकि सकषाय जीव कषाय से प्रथम स्वयं अपने आत्मा के चैतन्य प्राण का हनन तो करता ही, है चाहे अन्य जीव की हिंसा हो या न हो।

पर-वस्तु के कारण जीव को सूक्ष्म भी हिंसा नहीं होती अपने कषायभाव से ही हिंसा होती है।

हिंसा-अहिंसा सम्बन्धी यह वस्तु स्वरूप है और यही जैनागम का संक्षिप्त रहस्य है। इस सम्बन्ध में कुन्दकुन्दाचार्य देव समयसार के बन्ध अधिकार में कहते हैं :–

अज्झवसिदेण बन्धो सत्ते मारेउ मा व मारेउ।
एसो बन्धसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स।। २६२।।
मारो न मारो जीव को है बन्ध अध्यवसान से।
यह आतमा के बन्ध का संक्षेप निश्चयनय विषैं।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परजीवों का जीवन या मरण तो उनके कर्म के उदयानुसार हो या न हो, परन्तु उनको मारने का या जिलाने का जो अध्यवसाय है वही निश्चय से जीव को बन्ध का कारण है।

हिंसा-अहिंसा का ऐसा सूक्ष्म स्वरूप मात्र जैनशासन में ही है, क्योंकि जीव के चैतन्य प्राणों से रागादि का भिन्नपना जैनशासन में ही बताया है। अन्य मिथ्यामार्गी जीव हिंसा-अहिंसा का सच्चा स्वरूप नहीं पहिचान सकते क्योंकि जीव के चैतन्य प्राण की और राग की भिन्नता वे नहीं जानते।

इस महत्वपूर्ण विषय को समझने के लिए पाण्डवों का उदाहरण भी दिया जा रहा है :–

युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन पाँचों पाण्डवों ने जब दग्ध हुई श्रीकृष्ण की द्वारका नगरी को देखा, तो संसार की क्षण भंगुरता देखकर उनका चित्त उदास हो गया और वे सब नेमिनाथ प्रभु के समवशरण में आये, प्रभु के श्रीमुख से धर्मोपदेश सुनकर वे संसार से विरक्त हो गए, और मुनि दशा प्रकट करके आत्मध्यान पूर्वक देशोंदेश विचरने लगे। विचरते-विचरते वे सोनगढ़ के पास स्थित शत्रुजयगिरि सिद्धक्षेत्र पर पधारे। अनेक भक्तजनों ने अत्यन्त हर्ष पूर्वक पाण्डव मुनिभगवन्तों के दर्शन किए, परन्तु दुर्योधन के भानजे के मन में पाण्डवों को देखकर ऐसा दुष्ट विचार आया कि इन पाण्डवों ने मेरे मामा का नाश किया है इसलिए अब मैं इनसे उनका बदला लूंगा, क्योंकि इस मुनिदशा में वे उसका कोई प्रतिकार नहीं करेंगे। ऐसे दुष्ट विचार पूर्वक उसने लोहे के गर्म धधकते आभूषण पाण्डवों के शरीर में पहनाए और उनको जीवित ही जला देने का घोर उपसर्ग किया। माथे पर गर्म लोहे का मुकुट पहनाया जिससे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

माथा सुलगने लगा। हाथ-पैर आदि के आभूषणों से भी वे सब सुलगने लगे।

उक्त उपसर्ग के समय युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तो चिदानन्द तत्व की शान्त अनुभूति में ऐसे लीन हो गए कि उपसर्ग के ऊपर लक्ष भी नहीं गया। धधकती हुई अग्नि में भी चैतन्य के शान्तरस में ऐसे ठहर गए कि उसी समय क्षपक श्रेणी माँड़कर, सम्पूर्ण वीतरागी होकर, केवलज्ञान प्राप्त किया, और तत्क्षण मोक्ष पा लिया। उनके चित्त में राग की उत्पत्ति ही नहीं हुई, इसलिए वे परम अहिंसक रहे, उनके चैतन्यभाव की हानि नहीं हुई।

दूसरी तरफ नकुल और सहदेव दोनों भ्राताओं ने यद्यपि शान्ति से उपसर्ग सहन किया, शत्रु के ऊपर क्रोध नहीं किया, परन्तु उनको इतनी वृत्ति उठी कि इस उपसर्ग में हमारे ज्येष्ठ भ्राताओं का क्या होता होगा? इस प्रकार संज्वलनरूप बन्ध-मोह शेष रह गया अर्थात् इतने राग की उत्पत्ति हुई और वे दोनों वीतरागरूप से नहीं रह सके, केवलज्ञान नहीं पा सके, और इस विकल्प से होने वाली चैतन्यभाव की सूक्ष्म हिंसा के कारण उन्हें संसार में सर्वार्थसिद्धि का भव प्राप्त हुआ। मोक्ष से वंचित रहे और भव ही हुआ। हाँ, उन्होंने विशेष उद्वेग नहीं किया तथा पाण्डवों को बचाने की भी चेष्टा नहीं की, इतनी वीतरागता उनके वर्तती थी और वह अहिंसा थी।

तीसरा कोई जीव ऐसा था कि जिसने इस उपसर्ग को देखकर उपसर्ग करने वाले के ऊपर तीव्र क्रोध किया और पाण्डवों को जलते देखकर विशेष उद्वेग किया तथा भक्तिवश उनको बचाने की चेष्टा की।

इस जीव ने किसी जीव की हिंसा तो नहीं की तथापि जितना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्रोधभाव किया उतने अंश में चैतन्यभाव की हिंसा की, अर्थात् ऊपर के दो नम्बर वाले जीवों की अपेक्षा इस जीव को बहुत हिंसा हुई इसके परिणाम शुभ होने पर भी हम इसे अहिंसक नहीं कहते, क्योंकि अहिंसा तो अपने वीतरागभाव को ही स्वीकारती है। अर्थात् पर जीवों को बचाने के उद्वेग परिणाम वाला जीव ही पूर्ण अहिंसक है।

चौथा जीव कि जिसने मुनि को मार डालने के क्रूर परिणाम किए थे, उसकी तो क्या कहें ? वह तो तीव्र हिंसक ही था।

इसप्रकार जीव के सराग-वीतराग परिणामों के अनुसार हिंसा-अहिंसा है, और उसमें भी जो मिथ्यात्व है वह सबसे बड़ी हिंसा है।

जैन सिद्धान्तानुसार हिंसा-अहिंसा का ऐसा सत्य स्वरूप जो नहीं जानता, वह वीतराग भावरूप अहिंसाधर्म को नहीं पहचानता, तथा शुभ राग को अहिंसाधर्म मानता है, जबकि उससे भी चैतन्य प्राण का घात होता है। इसप्रकार हिंसा को ही अहिंसा मान लेने के कारण उस जीव को मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व में महानतम हिंसा का सेवन है। जिसने हिंसा को ही अहिंसा मान लिया, राग को ही वीतरागता मान लिया, उस जैसा महान पाप अन्यत्र कहाँ हैं ?

इसलिए जिसको सच्चा अहिंसक बनना हो उसे किसी भी राग को परमधर्म अहिंसा नहीं मानना चाहिए। जितना राग उतनी हिंसा – ऐसा समझकर उस हिंसा को छोड़ना चाहिए। और जितनी वीतरागता उतनी अहिंसा – ऐसा समझकर उसको आदर पूर्वक अंगीकार करना चाहिए। ऐसी वीतरागी अहिंसा के द्वारा ही भवसमुद्र से पार हुआ जा सकता है।

अहिंसा का स्वरूप समझने के लिए निम्न दृष्टान्त भी उपयोगी है :–

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक जंगल की रमणीय गुफा में एक भद्र परिणामी सूकर रहता था। उसी जंगल में एक क्रूर परिणामी सिंह भी रहता था। एक वीतरागी मुनिराज विहार करते-करते उस जंगल में आए, और जिस गुफा में सूकर रहता था उसी गुफा में विराजमान होकर शुद्धोपयोग से आत्मध्यान करने लगे।

मुनिराज को गुफा में देखकर भद्रपरिणामी सूकर ने ऐसा शुभ विचार किया कि अहो ! ये कोई वीतरागी महात्मा मेरी गुफा में विराजमान हैं, इनको देखते ही कोई अपूर्व शान्ति होती है। इनके पधारने से मेरी गुफा धन्य हुई। मैं किसप्रकार उनकी सेवा करूँ ! ऐसे शुभ भाव पूर्वक वह सूकर गुफा के दरवाजे पर बैठकर उन मुनिराज की रक्षा करने लगा।

उसी समय गुफा के पास आए हुए सिंह को ऐसा भाव आया कि मैं इस मनुष्य को मार कर खाऊँ।

उसी समय शुद्धोपयोग में लीन मुनिराज न तो सूकर पर राग ही कर रहे थे, और न सिंह पर द्वेष ही कर रहे थे। वे तो वीतरागी आनन्द ले रहे थे।

मुनिराज का भक्षण करने की भावना से सिंह गुफा के पास आया। सूकर की दृष्टि उस पर पड़ी और अविलम्ब ही उसने आगे बढ़ते हुए सिंह को रोका।

सिंह उस सूकर पर टूट पड़ा सिंह और सूकर में परस्पर लड़ाई हुई। क्रूर सिंह के मुकाबिले में सूकर ने बराबर टक्कर ली। उसके मन में एक ही धुन थी कि प्राणान्त होने पर भी मैं मुनिराज का बाल बाँका नहीं होने दूँगा। दोनों ही खूब लड़े ! एक तो लड़ रहा मुनिराज के रक्षण के लिए, और दूसरा लड़ रहा था उनके भक्षण के लिए।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लड़ते-लड़ते यहाँ तक नौबत आई की दोनों ने ही एक दूसरे को मार डाला, दोनों ने ही एक-दूसरे की हिंसा की। परन्तु सिंह तो मरकर दुर्गति में गया और सूकर मरकर सुगति में गया, मुनिराज तो ध्यान में ही वीतरागपने विराजे रहे और केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्षगति प्राप्त की।

इस दृष्टान्त में तीन पात्र हैं :–

सिंह का जीव :– जो मुनिराज को मारने की अप्रशस्त द्वेष कषाय में वर्तता है।

सूकर का जीव :– जो मुनिराज को बचाने की प्रशस्त राग-कषाय में वर्तता है।

मुनिराज :– जो अकषायरूप वीतरागभाव में वर्तते हैं।

अब इसमें हिंसा-अहिंसा किसप्रकार है यह देखने के लिए जब हम सूकर और सिंह की तुलना करेंगे, तब सिंह की अपेक्षा सूकर के भाव अच्छे हैं, अतः सिंह की अपेक्षा सूकर कि प्रशंसा करेंगे।

मुनिराज की हिंसा नहीं हुई तो भी सिंह को अपने क्रूर परिणामों के कारण हिंसा का पाप लग ही गया और वह दुर्गति में गया। सिंह को हिंसा हुई तथापि सूकर अपने शुभ परिणाम के कारण सुगति में गया। इससे यह सिद्ध हुआ कि बाह्य जीवों का जीवन-मरण हिंसा-अहिंसा का कारण नहीं, किन्तु जीव का भाव ही हिंसा-अहिंसा का कारण है। इस दृष्टान्त में मुनि की हिंसा भले ही नहीं हुई, यहाँ तक कि उनको मार डालने के सिंह के हिंसक भाव को किसी भी प्रकार से भला नहीं कहा जा सकता। मुनि को मारने की अपेक्षा तो मुनि को बचाने का भाव – राग भाव अवश्य प्रशंसनीय है। परन्तु अभी बात अधूरी है, क्योंकि अभी तीसरे पात्र का विश्लेशण करना शेष है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जब मुनिराज को भी सामने रखकर तुलना करेंगे, तब निस्सन्देहपने दिखाई पड़ेगा कि वीतराग भाव में विराजमान मुनिराज का कार्य ही श्रेष्ठ कार्य है, वही अत्यन्त प्रशंसनीय है और उस वीतराग भाव की समानता में सूकर का प्रशस्त राग भी प्रशंसनीय नहीं है।

मुनिराज का वीतराग भाव ही परम अहिंसारूप होने से उसे ही हम प्रशसनीय कहेंगे, और उसे ही मोक्ष का कारण कहेंगे।

उस वीतरागभाव के समक्ष सूकर के राग भाव को हम "परम" अहिंसा नहीं कहेंगे, अपितु उसे भी "हिंसा" की कक्षा में ही रखेंगे। भले ही उस राग में "प्रशस्त" विशेषण लगाया जाय, तो भी उसे हिंसा तो कहना ही पड़ेगा, क्योंकि जितनी कषाय है उतनी तो हिंसा है ही। पीतल में प्रशस्त विशेषण लगाकर प्रशस्त पीतल कहें, परन्तु इससे कहीं वह पीतल स्वर्ण की जाति में तो नहीं आ सकता। उसी प्रकार किसी रागादि हिंसा को प्रशस्त विशेषण से सम्बोधित कर दिया जाय तो इससे कहीं वह "अहिंसा" की संज्ञा को प्राप्त नहीं हो सकता।

शुभराग वाला वह सूकर का जीव भी आगे चलकर जब राग रहित चैतन्य भाव प्रकट करेगा तभी वह वीतराग भावरूप अहिंसाधर्म में आवेगा, और उसी परम अहिंसाधर्म से वह मोक्ष को साधेगा। इसप्रकार यह "अहिंसा परमोधर्मः" का स्वरूप है।

मुनि के वीतराग भाव को और सूकर के राग भाव को हम एक ही कक्षा में नहीं रख सकते, क्योंकि दोनों की जाति एक दूसरे से विरुद्ध हैं।

मुनि को मारने के भाव से बचाने का भाव अपेक्षाकृत उत्तम होने पर भी, उन दोनों की एक ही कक्षा है। जैसे, एक ही वर्ग में पढ़ते हुए विद्यार्थियों में एक प्रथम नम्बर का हो, और एक अन्तिम नम्बर का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो, परन्तु दोनों की कक्षा एक ही है, वैसे सिंह और सूकर दोनों में जितनी रागादि कषाय है उतनी हिंसा है, और जो हिंसा है वह अहिंसा नहीं है, धर्म नहीं है। मुनिराज का वीतराग भाव अहिंसा है और वही धर्म है।

भगवान महावीर द्वारा कथित परम अहिंसा धर्म को जानने के लिए, और उसका पालन करने के लिए, मुमुक्षु जीव को प्रथम तो चैतन्य उपयोग और राग इन दोनों का अत्यन्त भिन्नपना जानना चाहिए। भिन्नपना जाने तो ही रागरहित शुद्धोपयोगरूप अहिंसाधर्म को साध सकता है। भगवान महावीर ने और उनके शासन में हुए सन्तों ने वैसा भिन्नपना अपने आत्मा में साक्षात् अनुभव करके आगम में स्पष्ट बताया है। आचार्य कुन्दकुन्द देव समयसार गाथा 24 में कहते हैं :–

सव्वण्हुणाणदिदठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।
कह सो पोग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं।।

शरीर से और रागादिभावों से भिन्न चैतन्यमय आत्मतत्व को जो नहीं जानता, और जीव को रागादि संयुक्त ही अनुभव करता है, ऐसे अप्रतिबुद्ध जिज्ञासु को आचार्यदेव सर्वज्ञ के ज्ञान की साक्षी से और अपने अनुभव से प्रतिबोधित करते हैं कि हे भाई ! 'जो नित्य उपयोग स्वरूप है वह जीव है' ऐसा सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान में आया है, आगम में भी भगवान ने ऐसा स्पष्ट प्रकाशित किया है, और अनुभव में भी जीव सदा ज्ञानस्वरूप से ही अनुभूत होता है।

अपना उपयोगपना छोड़कर जीव कभी पुद्गलरूप तो हो नहीं जाता। जैसे अंधकार को और प्रकाश को एकपना नहीं है, भिन्नपना ही है, उसी प्रकार चेतन प्रकाश रहित रागादि भावों को और चेतन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकाश रूप उपयोग को कभी एकपना नहीं है, सदा भिन्नपना ही है। इसप्रकार अपने उपयोग लक्षण से अपने जीव को तू समस्त जड़ से और राग से भिन्न जान, और उपयोग स्वरूप से ही अपने को अनुभव में लेकर तू अत्यन्त प्रमुदित हो।

अरे ! आज तक उपयोग स्वरूप को भूलकर, रागादिरूप ही अपने को मानकर अपनी हिंसा की, और इसीलिए चतुर्गति में दुःखी हुआ। अब सर्वज्ञ मार्गी श्रीगुरुओं के प्रताप से अपने स्वतत्व का मुझे भान हुआ कि अहो ! मैं तो सदा उपयोगस्वरूप ही रहा हूँ, मेरा यह उपयोगस्वरूप कभी घाता नहीं गया; इस प्रकार उपयोग स्वरूप आत्मा की अनुभूति रागादि से अत्यन्त भिन्न होने से परम अहिंसारूप है, अर्थात् उपयोग स्वरूप आत्मा के अनुभवरूप शुद्धोपयोग ही परम अहिंसा धर्म है।

सर्वमान्य मोक्षशास्त्र में श्री उमास्वामी जी कहते हैं "उपयोगो लक्षणम्"।

उपयोग जिसका लक्षण है वह जीव है। जीव को अपने उपयोग स्वरूप में सदा तन्मयपना है, रागादि में या शरीरादि में उसका तन्मयपना नहीं है। वह उपयोग किसी के द्वारा रचित नहीं है। अपना अस्तित्व रखने के लिए वह कहीं इन्द्रियों की या राग की अपेक्षा भी नहीं रखता। उपयोग इन्द्रियों और राग से रहित जीव का स्वयं सिद्ध स्वरूप है।

उपयोग कहो या चेतना कहो। उस चेतना का रागरहित परिणमना अर्थात् शुद्ध चेतना ही अहिंसा है, वही धर्म है, वही मोक्षमार्ग है। उस चेतना में रागादि अशुद्ध परिणमन हिंसा है, वही संसार का कारण है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपयोग और राग की स्थिति जीव के पाँच भावों में इसप्रकार है।

उपयोग पारिणामिक भाव है। उपयोग का शुद्धपरिणमन क्षायिकादि भावरूप है। रागादि भाव औदयिक भाव रूप हैं। इसप्रकार उपयोग और राग में भाव से भिन्नता है।

नव तत्वों में उपयोग और राग की स्थिति इसप्रकार है :—

उपयोग तो जीव और संवर-निर्जरा मोक्षतत्व में आता है। रागादिभाव आस्रव-बन्धतत्त्व में आते हैं। इस प्रकार उपयोग और राग ये दोनों तत्व भिन्न हैं।

न्याय-युक्ति से देखें तो :—

उपयोग के साथ आत्मा की समव्याप्ति है। रागादि के साथ आत्मा की समव्याप्ति नहीं है। इसलिए न्याय से उपयोग और राग की भिन्नता ही सिद्ध होती है, उपयोग और राग की एकता किसी प्रकार सिद्ध नहीं होती।

अनुभव में भी उपयोग और राग का स्वरूप इसप्रकार है :—

रागादि रहित उपयोग स्वरूप जीव ही अनुभव में आता है। किन्तु उपयोग से रहित जीव कभी अनुभव में नहीं आता।

इसप्रकार धर्मी की अनुभूति में उपयोग और राग की भिन्नता है, राग से भिन्न उपयोग स्वरूप आत्मा ही अनुभूति में प्रकाशता है। यही बात आचार्य कुन्दकुन्द देव नियमसार और भावप्राभत में कहते हैं :—

एगो में सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा में बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।।

मैं एक शाश्वत ज्ञान-दर्शन लक्षण आत्मा हूँ, उपयोग के अतिरिक्त अन्य सब संयोग लक्षणरूप भाव मेरे से बाहर हैं, वे मेरे स्वभाव लक्षण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रूप नहीं हैं – ऐसी धर्मात्मा की अनुभूति होती है।

रागादिभाव यदि आत्मा का लक्षण हो तो उनके नाश से आत्मा भी मरण को प्राप्त हो जाय, परन्तु राग का नाश हो जाने पर भी सिद्ध जीव सादि अनन्तकाल तक आनन्द से जीते हैं, अतः राग आत्म-लक्षण नहीं है। राग को आत्मा का लक्षण मानें तो अव्याप्ति दोष आता है। उपयोग ही आत्मा का लक्षण है, वह आत्मा से कभी भिन्न नहीं पड़ता। उपयोग के अभाव में आत्मा का अभाव हो जावेगा, क्योंकि आत्मा सदा उपयोग स्वरूप है। उपयोग ही जीव का सर्वस्व है। उस उपयोग की शुद्ध अवस्था हो तब उसके साथ शान्ति, वीतरागता, आनन्द आदि सर्व गुणों से आत्मा का जीवन शोभित हो उठता है, वही सच्चा जीवन है।

मोह-रागादि भाव उपयोग से विपरीत हैं, उनमें शान्ति का जीवन नहीं, किन्तु भावमरण है, इसलिए जीव को वह इष्ट नहीं है।

शुद्धोपयोग सच्चा अहिंसाधर्म है, उसमें राग का अभाव है, वह जीव को इष्ट है, क्योंकि उसमें स्वभाव का घात नहीं होता, अपितु आनन्दमय स्वभाव की उपलब्धि होती है, अतः वही जीव को इष्ट है। इस तरह वीतराग भाव का उपदेश ही भगवान महावीर का इष्ट उपदेश है।

हे भव्य जीवो ! भगवान के ऐसे इष्ट उपदेश को पहिचानकर उसकी उपासना करो।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

व्रती श्रावक का स्वरूप

अहिंसा धर्म का स्वरूप विस्तार से समझाने के बाद अब अहिंसा व्रतों के धारक श्रावक का स्वरूप कहते हैं।

जिसने सर्व कषायों से अत्यन्त भिन्न उपयोग स्वभाव को जानकर सम्यग्दर्शन और भेद-ज्ञान किया है, उसको बाद में वीतराग भाव की वृद्धि होने पर श्रावकपना तथा मुनिपना होता है। उसमें से श्रावक के अणुव्रतों का वर्णन इस छहढाला की चौथी ढाल के 10 वें से 13 वें छन्द में चल रहा है।

शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप, हर्ष-शोक ये सब संसार के द्वन्द हैं, आत्मा उन सबसे भिन्न चेतन स्वरूप है। ऐसे आत्मा का श्रद्धान, ज्ञान और ध्यान ही शास्त्र की लाखों बातों का सार है, इसलिए ऐसा निश्चय करके अन्तर में तुम सदा आत्मा को ध्यावो – ऐसा कहा है।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होने पर जो आत्मस्वरूप अनुभव में आया, उस स्वरूप में एकाग्र होने पर आत्मशान्ति जितनी बढ़े और कषाय भाव जितना छूटे, उतने ही प्रमाण में चारित्रदशा होती है। वह चारित्र रागरूप नहीं है, किन्तु वीतराग भावरूप है, उसमें कषाय नहीं है अपितु परमशान्ति है, वह स्वर्ग का कारण नहीं, किन्तु मोक्ष का कारण है। ऐसी चारित्रदशा के साथ जो राग शेष रह जाता है, वह कितना मर्यादित होता है उसका वर्णन व्रत के कथन द्वारा किया है।

चौथे गणस्थान में आंशिक वीतराग भाव हुआ है, परन्तु व्रत भूमिका के योग्य वीतराग भाव अभी नहीं हुआ, इसलिए उसे "अविरत" कहा जाता है। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को अनन्तानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ के अभावरूप "स्वरूपाचरण" तो

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, तथा उतनी शान्ति भी निरन्तर वर्तती है, परन्तु हिंसादि पापों का नियम से त्यागरूप चारित्र श्रावक अथवा मुनि को ही होता है। उसमें श्रावक को पाँचवें गुणस्थान में यद्यपि एक देश चारित्र होता है तथापि सर्वार्थ सिद्धि के देवों की अपेक्षा वह अधिक सुखी है। अहो, चारित्रदशा देखो कैसी महिमावन्त है।

सम्यक्पना सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना चारित्र में नहीं आता इसी अपेक्षा से सम्यग्दर्शन और सम्ययग्ज्ञान को सम्यक्चारित्र का कारण कहा है। सम्यग्दर्शन बिना अकेला बाह्य क्रिया काण्ड या शुभराग रूप व्रत सच्चे चारित्र नहीं हैं, अर्थात् वे मोक्षमार्ग में कार्यकारी नहीं हैं। ऐसा रागरूप चारित्र तो अज्ञान सहित जीव ने अनन्तबार कर लिया है। आठ कषाय के अभाव रूप एक देश वीतराग चारित्र (देश चारित्र) सम्यग्दृष्टि के ही होता है, बाद में बारह कषाय के अभाव वाला सकल चारित्र तो निर्ग्रन्थ-दिगम्बर मुनि के ही होता है। ऐसा चारित्र ही मोक्ष का कारण है।

चारित्र के बिना मोक्ष नहीं होता यह-बात बिलकुल सत्य है, परन्तु वह चारित्र कैसा ? कि जैसा ऊपर कहा है वैसा वीतराग। चैतन्य स्वरूप में एकाग्रता से ही वीतराग चारित्र होता है। ऐसे चारित्र का स्वरूप पहिचानकर सम्यग्दर्शन ज्ञान के पश्चात् परिणाम की शुद्धता अनुसार दृढ़ चारित्र धारण करना चाहिए। विशेष शक्ति न हो तो अल्प चारित्र ग्रहण करना, किन्तु चारित्र में शिथिलता नहीं रखना। दृढ़ता पूर्वक पालन करते हुए आगे बढ़ते जाना।

धर्मी-श्रावक को यद्यपि मुनि जैसा चारित्र नहीं होता, फिर भी उसे भावना तो मुनिपने की ही होती है। उसी भावना पूर्वक वह हिंसादिक पापों को नियम पूर्वक छोड़कर अहिंसादि व्रतों का पालन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करता है, तथा उन्हीं की पुष्टि के लिए तीन गुण-व्रत और चार शिक्षा-व्रत पालता है। दिग्व्रत, देश व्रत और अनर्थ दण्ड परित्याग व्रत ये तीन गुण व्रत हैं, क्योंकि वे व्रत के पालन में गुण करने वाले हैं।

दशों दिशा सम्बन्धी मर्यादा निश्चित करके उससे बाहर के क्षेत्र में जीवन पर्यन्त न जाना, तथा पत्र-व्यवहार द्वारा भी वहाँ से व्यापारादि का सम्बन्ध न रखना, उसका नाम दिग् (दिशा) व्रत है।

दिग्व्रत में जितनी छूट हो उसमें से भी अमुक क्षेत्र में जाने का अमुक समय तक त्याग करना देशावकाशिक व्रत है।

निष्प्रयोजन पाप की वृत्तियाँ–जैसे लड़ाई की बातें, भूमि खोदना, फल-फूल तोड़ना, बहुत पानी फैलाना, अन्य प्राणियों को दुःख हो ऐसा खेल खेलना, कोई लड़ता हो उसे उत्तेजित करना, दूसरे की निन्दा में रस लेना। इस तरह अनेक प्रकार की अनर्थ रूप पाप प्रवृत्तियों का त्याग करना अनर्थदण्ड परित्याग व्रत है। अनर्थदण्ड व्रत ऐसा संक्षेप में बोला जाता है, किन्तु पूरा नाम "अनर्थदण्ड परित्याग" है।

उसके बाद सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण और अतिथि संविभाग, (मुनि आदि को आहारदान की भावना) ये चार शिक्षा-व्रत हैं। इनके अभ्यास से श्रावक मुनिपने की भावना पुष्ट करता है। दर्शन प्रतिमा और व्रत प्रतिमा के बाद आगे बढ़कर सामायिक प्रतिमा, प्रोषधोपवास, सचित्त त्याग, रात्रि भोजन त्याग, ब्रह्मचर्य, आरंभ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग, उद्दिष्ट भोजन त्याग, इसप्रकार कुल 11 प्रतिमाएँ होती हैं। यद्यपि इनमें रात्रि भोजन त्याग आदि सदाचार तो सामान्य गृहस्थों के भी होता है, परन्तु प्रतिमाधारी श्रावक को ये सब आचरण अतिचार रहित, प्रतिज्ञा पूर्वक होता है। श्रावक के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्त्र धारण होता है, परन्तु मुनि होने के बाद शरीर पर किसी प्रकार का वस्त्र नहीं रहता, अतः जैन मुनि निर्ग्रन्थ कहे जाते हैं।

जिज्ञासुओं को यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि व्रतों का पालन सम्यग्दर्शन सहित होने पर ही सच्चा होता है, और उसमें भी जितनी शुद्धता और वीतरागता है उतना ही मोक्षमार्ग है, जितना शुभराग है वह पुण्यबंध का कारण है, मोक्ष का कारण नहीं।

अहा ! चैतन्यसाधना में मग्न मुनियों की तो क्या बात, वे तो अतिन्द्रिय आनन्द में विशेष लीन हैं, महाव्रती हैं, उनकी तो मात्र पानी में रेखा जैसी अति मन्द संज्वलन कषाय रह गई है, बारह कषाय के अभाव से अतिन्द्रिय शान्ति विशेष बढ़ गई है, उस मुनिदशा का वर्णन छठी ढाल में करेंगे। श्रावक का वर्णन है। श्रावक मुनि से कुछ छोटा होता है, परन्तु उसे भी चैतन्य की अतिन्द्रिय शान्ति का निर्विकल्प वेदन कभी-कभी हुआ करता है। ऐसे व्रतधारी पंचम गुणस्थानवर्ती आत्मानुभवी असंख्यात श्रावक ढाई द्वीप के बाहर हैं। वे सभी तिर्यञ्च हैं। यद्यपि वहाँ के तिर्यञ्चों (पंचेन्द्रिय संज्ञी) में असंख्यातवाँ भाग सम्यग्दृष्टि जीवों का है, तो भी वे असंख्यात हैं और श्रावक भी असंख्यात हैं। मनुष्यों का गमन ढाई द्वीप के बाहर नहीं होता परन्तु तिर्यञ्च तो (सिंह-बाघ-मछली आदि) ढाई द्वीप के बाहर असंख्यात सम्यग्दृष्टि श्रावक हैं। असंख्यात मिथ्यादृष्टि के बीच में एक सम्यग्दृष्टि, तथापि ऐसे सम्यग्दृष्टि और व्रती श्रावक असंख्यात हैं। संमूर्छन को छोड़कर गर्भज मनुष्य तो संख्यात ही हैं, तथा उनमें भी सम्यग्दृष्टि और श्रावक तो थोड़े ही होते हैं। इतना होने पर भी मनुष्यों में सम्यग्दृष्टि जीवों की संख्या अरबों में होना शास्त्र में कही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ढाईद्वीप के बाहर जो असंख्यात द्वीप – समुद्र हैं उनमें तो भोगभूमि की रचना है, अर्थात् वहाँ उत्पन्न हुए जीवों को व्रत या श्रावकपना नहीं होता। किन्तु अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र में कर्मभूमि जैसी रचना है, वहाँ रहने वाले तिर्यञ्च को पंचम गुणस्थान का श्रावकपना हो सकता है। वे व्रती – श्रावक तिर्यञ्च सामायिक भी करते हैं, उनके सामायिक व्रत होता है। कुछ अमुक निश्चित शब्दों का बोलना ही सामायिक नहीं है, किन्तु अन्तर में अकषायभाव होने पर चैतन्य में से समतारस के झरने झरते हैं – उसका नाम सामायिक है। समताभावरूप आत्मपरिणति हो गई, वही सामायिक है।

वाह ! सम्यग्दर्शन के पश्चात् तिर्यञ्च को भी सामायिक होती है, समुद्र में मछली को भी सामायिक होती है, सिंह को भी सामायिक होती है। देखो न ! राजा रावण का हाथी त्रिलोकमण्डन, जिसको रामचंद्र जी अयोध्या ले आये थे, वह भी जाति स्मरण और सम्यग्दर्शन सहित व्रतधारी श्रावक हो गया था। महावीर के आत्मा को सिंह के भव में सम्यग्दर्शन हुआ, और उसने व्रतधारी श्रावक होकर समाधिमरण किया।

पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक गृहस्थ भी हो सकता है, उसके स्त्री पुत्रादि भी होते हैं, कोई स्त्री भी श्राविका होवे और रसोई आदि भी करे, उसमें आरम्भ जनित अमुक हिंसा भी होती है, परन्तु त्रस जीव को संकल्प से मारने का भाव उसको नहीं होता। अरे ! सामान्य दयालु सज्जनों को भी ऐसे क्रूर परिणाम नहीं होते। श्रावक तो अत्यन्त करुणावन्त दयालु होता है, किसी भी जीव को दुःख देने की वृत्ति उसको नहीं होती। एक चींटी को भी मार डालूं या दुःख दूँ, ऐसी वृत्ति श्रावक को नहीं होती। जल आदि स्थावर जीवों की हिंसा हो – ऐसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवृत्ति भी बिना प्रयोजन के श्रावक नहीं करता। इसी प्रकार असत्यादि पापों से भी उसका चित्त पीछे हट गया है। विशेष अकषायी समताभाव उसके वर्तता है। अहा! जैनधर्म में श्रावकपद कितना ऊँचा है, इसकी जगत को खबर नहीं। इसके चारित्र की वीतरागी चमक कोई अद्भुत होती है।

सम्यग्दर्शन होने पर अपने आत्मा को सिद्धसमान अनुभव किया और सर्वजीव परमार्थ से सिद्धसमान भासित हुए, तब अन्नतानुबंधी कषाय के अभावरूप समभाव प्रगट हो गया। वह धर्मात्मा किसी को अपना विरोधी या शत्रु नहीं मानता अर्थात् उसे किसी को मार डालने की बुद्धि नहीं होती। उसके उपरान्त पाँचवाँ गुणस्थान होने पर तो समभाव की विशेष वृद्धि हो जाती है और कषाय विशेष छूट जाती है। किसी जीव को मार देने की या दुःख देने की वृत्ति उसके नहीं रहती, दूसरे प्राणी को दुःख पहुँचे या उसका वध हो ऐसे कठोर वचन भी वह नहीं बोलता। धर्म की निन्दा के वचन अथवा घात के वचन असत्यवचन हैं, धर्मी को वे शोभा नहीं देते। उठते-बैठते, चलते-फिरते प्रयोजन रहित असत्य बोले – ऐसा श्रावक को नहीं होता।

इसी प्रकार व्रती श्रावक पराई वस्तु नहीं चुराता, परस्त्री से भी अत्यन्त विरक्त रहता है और स्वस्त्री में भी मर्यादित रहता है, तथा देश काल अनुसार परिग्रह की मर्यादा रखता है। यद्यपि स्थूलरूप से हिंसादि पापों का त्याग तो साधारण सज्जन को भी होता है, परन्तु श्रावक के तो नियमपूर्वक उनका त्याग होता है, प्राणनाश का प्रसंग आने पर भी उसमें दूषण नहीं लगने देता, इसप्रकार उसको शुद्धि बढ़ गई होती है। ज्ञान में, स्थिरता में, शान्ति में, वीतरागता में वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्वार्थसिद्धि के देव की अपेक्षा भी आगे बढ़ गया है, चारित्र की चमक से उसका आत्मा मोक्षमार्ग में शोभित हो रहा है।

देखो! यह जैनधर्म की श्रावकदशा! मैं शुद्ध आनन्दचेतना स्वरूप हूँ – ऐसे अनुभव पूर्वक होने वाले वीतराग भाव की यह बात है। जहाँ अनन्तानुबन्धी तथा अप्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष कषायें सर्वथा छूट गई हैं, वहीं हिंसादि पापों का सच्चा त्याग है और वही सच्चे व्रत हैं। उन्हीं व्रतों में अलौकिक वीतरागी शान्ति होती है। ऐसा पाँचवा गुणस्थान नरक और स्वर्ग में नहीं होता, तिर्यञ्च के पाँचवें गुणस्थान तक की दशा होती है, छठा नहीं होता। मनुष्य गति में सभी (14) गुणस्थान होते हैं, इसलिए वह उत्तम है।

सम्यक्त्वादि गुणों से जीव की शोभा है, सम्यक्त्व के बाद चारित्र दशा से जीव विशेष शोभता है। अहो जीवो! राग में कोई शोभा नहीं है, वीतरागता में ही शोभा है। सम्यग्दर्शन सहित जितनी वीतरागी शुद्धता हुई, उतना निश्चयव्रत है; उसके साथ में अहिंसादि सम्बन्धी जो शुभराग रहा, वह व्यवहारव्रत है। व्रत की भूमिका में वीतरागी देव-गुरु-धर्म की बराबर पहिचान होती है तथा उनके द्वारा कहे गये आत्मस्वरूप के भानसहित सम्यग्दर्शन होता है। इसमें ही जिसकी भूल है, देव-गुरु-धर्म ही जिसका खोटा हो, उसको व्रत कहाँ से होंगे? कैसे होंगे? तथा चारित्र भी कैसे होगा? इसलिए कहा कि परद्रव्य से भिन्न आत्मस्वरूप की रुचि सो सम्यक्त्व है और अपने स्वरूप का जानना सो सम्यग्ज्ञान है, उसे लाख उपाय करके भी धारण करो, तथा सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान के उपरान्त परिणाम की शुद्धतानुसार दृढ़पने चारित्र का पालन करो। हो सके तो मुनि की भूमिका का उत्तम चारित्र पालो, यदि हीनशक्ति हो तो श्रावक के योग्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एकदेशचारित्र पालन करो, उसमें शिथिलता मत रखो। अपने परिणाम की शुद्धता का विचार किए बिना चारित्र या व्रत तो धारण कर ले, फिर उसमें शिथिलाचार वर्ते – यह जैनधर्म में शोभा नहीं देता। तुझ से विशेषचारित्र न पल सके तो अल्पचारित्र ही पालना, परन्तु भाई! बड़ा नाम धारण करके शिथिलाचार द्वारा तू चारित्र को लजाना मत। शुद्धता सहित चारित्र का पालन हो तब तो अत्युत्तम है, पूजनीक है, सम्यग्दृष्टि इन्द्र भी चारित्रवंत के चरणों में नमता है, किन्तु जहाँ आत्मा का ज्ञान ही नहीं वहाँ चारित्रदशा कैसी ? ऐसे अज्ञानी के व्रत-तप को तो समयसार गाथा 152 में बालव्रत और बालतप कहकर मोक्षमार्ग में निषेध किया गया है।

अणुव्रती श्रावक को पंचमगुणस्थान में स्थूल हिंसादि पापों का तो सर्वथा त्याग हो गया है और सूक्ष्म हिंसादि रह गए हैं, उसको भी वह पाप समझता है, उन्हें करने जैसा नहीं मानता; उन पापों का उसे खेद है और सर्वसंग त्यागी मुनिपने की भावना है। वह अणुव्रती-श्रावक प्राण जावें तो भी पर की वस्तु को नहीं चुराता। संसार सम्बन्धी समस्त परस्त्रियों के प्रति उसका चित्त सर्वथा विरक्त रहता है। परस्त्री के सेवन का विकल्प भी उसके नहीं आता, देवांगना को देखकर भी उसका चित्त नहीं ललचाता – ऐसी निर्विकल्प शान्ति का स्वाद उसके सदा वर्तते हैं।

उसने परिग्रह की ममता त्यागकर उसकी मर्यादा कर ली है, मर्यादा के बाहर किसी परिग्रह की वृत्ति ही उसके नहीं उठती। आजकल तो देखो, धन के लिए लोग कैसी अनीति और अन्याय की प्रवृत्ति कर रहे हैं ? धर्मी-श्रावक को ऐसा नहीं होता, वह स्वर्ण के ढेर देखे, हीरा के टुकड़े देखे, तथापि उन्हें लेने की वृत्ति उसके न उठे,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इतनी निष्परिग्रहता उसके हो गई है, अर्थात् बाहर में ऐसा त्याग सहज होता है। श्रद्धा-ज्ञान में तो सभी सम्यग्दृष्टियों ने सर्व परद्रव्यों को अपने से सर्वथा भिन्न जाना है, उनमें एक रजकण मात्र का स्वामित्व उनके नहीं रहा, तदुपरान्त स्थिरता से दो कषायों का अभाव होने पर परिग्रह की ममता विशेष छूट गई है, जो मर्यादित परिग्रह है, उसकी अल्पममता को भी पाप समझता है और शक्ति बढ़ाकर उसका भी त्याग करना चाहता है।

इसप्रकार श्रावक-श्राविका अपने अणुव्रत में दृढ़ रहते हैं। देखो न, सुदर्शन सेठ के ऊपर कैसे-कैसे कष्ट के प्रसंग आए, तो भी अपने शीलव्रत से वह तनिक भी नहीं डिगे, नहीं डिगे। रानी ने उनके शील को डिगाने के लिए अनेक हाव-भाव करके ललचाया तथापि उन्हें किसी भी प्रकार रंचमात्र विकार नहीं हुआ और वे ब्रह्मचर्य में दृढ़ रहे। इसीप्रकार सीताजी, चन्दना आदि सतियों ने भी अनेकानेक कुचक्रों में फँसने पर भी महान धैर्य पूर्वक अपने शीलधर्म की सुरक्षा की जिनके उदाहरण जग प्रसिद्ध हैं। ऐसे महापुरुषों के उदाहरणों से धर्मी जीव अपने व्रतों में दृढ़ता रखता है। प्राण जावें तो चले जावें, किन्तु धर्मी जीव अपने व्रत को खण्डित नहीं होने देता, धर्म से विचलित नहीं होता।

वाह ! देखो धर्मी श्रावक के व्रत ! ऐसे व्रत सम्यक्त्व पूर्वक ही होते हैं। जिसमें राग-द्वेष का एक कण भी नहीं समाता, ऐसे अपने पूर्ण चैतन्यस्वभाव की सन्मुखता से मिथ्यात्व के महापाप को छोड़ने के बाद अस्थिरता के अल्प पापों से भी छूटने की यह बात है। जिसके अभिप्राय में राग का स्वीकार है, किसी भी प्रकार के राग से जो चैतन्य को लाभ मानता है, उसे भला वीतरागता कैसे हो सकती है ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और वीतरागता बिना व्रत कैसे हो सकते हैं ? उसने तो अभी राग से भिन्न चैतन्य स्वभाव को जाना ही नहीं, फिर भला वह राग को छोड़ेगा ही कैसे ? और चैतन्य में ठहरेगा ही कैसे ? इसलिए भेद-विज्ञान ही चारित्र का मूल कारण है – यह बात बराबर ध्यान पूर्वक समझनी चाहिए।

जहाँ राग के एक कण की भी रुचि है वहाँ निश्चित ही वीतरागी चैतन्य का अनादर है – अरुचि है, अर्थात् मिथ्यात्व है और वह घोर संसार का मूल है। सम्यग्दृष्टि तो आत्मा के मोक्ष स्वभाव को प्रतीत में लेकर विकार के किसी भी अंश को अपने में स्वीकार नहीं करता पश्चात् शुद्धता बढ़ने पर राग का त्याग होता जाता है, वह मोक्ष का कारण है, और जीव दया आदि सम्बन्धी जितना शुभराग रहे, उतना पुण्य बंध का कारण है, मोक्ष का कारण नहीं है। इसप्रकार मोक्ष और बंध दोनों के कारण को धर्मी जीव भिन्न-भिन्न पहचानता है और उनमें से किसी एक को भी दूसरे में मिलाता नहीं है।

अरे ! आजकल तो जीवों को तत्वज्ञान दुर्लभ हो गया है। जो तत्वज्ञान बिना मिथ्यात्व के महा अनर्थ में डूबे हुए होने पर भी अपने को व्रती – चारित्री मानकर दूसरे धर्मात्माओं को तिरस्कृत दृष्टि से देखता है, वह तो महान दोष में पड़ा है, जैनधर्म की पद्धति का उसे ज्ञान नहीं है। जैनधर्म में तो ऐसी पद्धति है कि प्रथम तत्वज्ञान हो और बाद में व्रत हों। जो सम्यग्दर्शन होने के पहले व्रत चारित्र होना मानता है, वह जैनधर्म के क्रम को नहीं जानता।

अहो ! सम्यक् दर्शन होने पर चैतन्य स्वभाव के अनन्त गुणों का भण्डार खुल गया, मोक्ष की किरणें खिल गई, अतीन्द्रिय सुख की कणिका प्रगट हो गई, उसकी भूमिका चोखी हो गई, अब उसमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चारित्र का वृक्ष से उगेगा और मोक्षफल पकेगा। सम्यग्दर्शन रूपी भूमिका बिना चारित्र का वृक्ष कहाँ से उगेगा ? इसलिए मोक्षमार्ग में पहले सम्यक्त्व का उपदेश प्रधान है। सम्यग्दर्शन से ही हित का प्रारम्भ होता है, उसके बिना शुभराग चाहे जितना करे तथापि हित का पंथ हाथ आने वाला नहीं।

अहो ! चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा के शुद्ध द्रव्य-गुण पर्याय के सामर्थ्य की क्या बात ! उसमें राग का किंचित् भी समावेश नहीं है। अपने ऐसे सुन्दर स्वभाव को अपने में देख लिया फिर दुनियाँ के समक्ष और क्या देखना ?

दुनियाँ के लोग अच्छा कहकर बखान करें या बुरा कहकर निंदा करें उससे अपने को कोई लाभ या हानि नहीं है। अपने को तो अपने स्वभाव की साधना से लाभ और विभाव से अपने को हानि है। स्वभाव में या विभाव में दुनिया के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

भाई ! तेरे भाव को दुनिया के लोग मानें, इससे तुझे क्या ? तू राग-द्वेष-कषाय से अपने आत्मा की हिंसा मतकर और वीतरागी शान्ति का वेदन कर यही तेरा प्रयोजन है। अहा ! जहाँ चैतन्य का प्रेम जगा वहाँ कषायों के साथ कट्टी हो गई। प्रशस्त अथवा अप्रशस्त सभी रागभाव उस कषाय में आ गए, उनसे चैतन्यभाव को भिन्न जानकर उसका जिसने प्रेम किया उसने मोक्ष के साथ मित्रता की। पश्चात् उस धर्मात्मा के जो राग रह जाता है, वह बहुत ही मन्द रस वाला होता है, अर्थात् उसको तीव्र हिंसा झूठ, चोरी, अब्रह्म या परिग्रह के पाप नहीं होते।

अहा ! धर्मी श्रावक का जीवन कैसा होता है। जिनेश्वर भगवन्तों का दास, और संसार से उदास, अन्तर की चैतन्य लक्ष्मी का स्वामी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और जगत के पास से अयाचक, जगत के पास से मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, मेरी सुख-समृद्धि का सारा वैभव मेरे में ही है – ऐसी अनुभूति की जिसको खुमारी है, वह श्रावक जगत की निन्दा–प्रशंसा सुनकर अटक नहीं जाता। लोगों की टोली विरोध करे तो उससे जीव को विभाव नहीं हो जाता, लोगों की टोली प्रशंसा करे तो उससे इस जीव को कहीं गुण नहीं हो जाते – वह समभावी तो मध्यस्थ रहकर अपने हितमार्ग पर ही चलता चला जाता है।

जिसका भाव मोह और कषाय में ही वर्तता है, दुनियाँ के लोग उसकी प्रसंशा करे तो भी उस प्रसंशा से उसको कोई लाभ नहीं और जिसका भाव मोहादि रहित शुद्ध वीतरागरूप हुआ है, दुनियाँ के लोग उसकी निन्दा करे तो भी उससे उसे कुछ भी हानि नहीं है।

अहा ! देखो तो सही आत्मा की स्वाधीनता ! अपने भावों के ऊपर ही सारा आधार है। अपने भाव में शुद्धता होना ही शान्ति का लाभ है, और अपने भाव में अशुद्धता होना ही हानि है। इसके अतिरिक्त लाभ-हानिकारक जगत में कोई शक्ति नहीं है। जितनी स्वभाव की सेवा उतना लाभ, और जितना विभाग का सेवन उतनी अर्थात् दूसरा कोई लाभ-हानि का करने वाला न होने से उसके ऊपर राग-द्वेष करना नहीं रहा, अपने भाव में शुद्धता करना ही रह गया। भावों में शुद्धता होने पर धर्मी को हिंसादिभाव छूटते जाते हैं और अहिंसादि व्रत प्रकटते हैं, तदनुसार उसको श्रावक या मुनिदशा होती है।

देखो ! भव भ्रमण का अन्त करके मोक्ष के महा आनन्द के मार्ग में चलने वाले धर्मात्मा की दशा कैसी अद्भुत होती है। इसकी दशा जगत से न्यारी होती है। इसके राग रहित ज्ञान में कोई अलौकिक विलक्षणता होती है। वह ज्ञान अपने हित में कहीं नहीं चूकता। उसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसे-जैसे शुद्धता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे राग टूटता जाता है, अल्पराग रहने पर व्रत – महाव्रत होते हैं। वहाँ जो शुभराग है वह उपचार से व्रत है, पुण्यभाव का कारण है और शुद्धता परमार्थ व्रत है, मोक्ष का कारण है। ऐसे दोनों भाव श्रावक और मुनि को एक साथ वर्तते हैं। व्रत – महाव्रत में अकेला राग नहीं किन्तु राग के साथ शुद्धता वर्तती है, वीतरागी चारित्र की चमक होती है।

अरे ! जहाँ शुद्धता का तो अंश भी न हो और मिथ्यात्व की मोटी अशुद्धता पड़ी हो, वहाँ शुभराग करने से क्या लाभ है ? चैतन्य की विराधना करके और राग का आदर करके वह भव में ही भटकेगा। यदि राग से भिन्न आत्मा को पहिचाने बिना त्रस की स्थिति का मर्यादित काल पूर्ण हो जायेगा, तो पीछे अनन्त काल तक एकेन्द्रिय स्थावर पर्याय में महा दारुण दुःखों को भोगेगा। वे दुःख सातवें नरक की घोरातिघोर वेदना से भी अनन्त गुने दुःसह होंगे। एक ओर निगोद के दुःख, और उसके समक्ष सिद्धों के सुख। चैतन्य तत्व की पहिचान और आराधना करने पर अनन्तकाल का सिद्ध सुख प्राप्त होता है, जिसका नमूना इस संसार में कहीं नहीं है। हे भाई ! ऐसे सुख को साध लेने का यह अवसर आया है और उसके लिए श्रीगुरु तुझे हित की शिक्षा देते हैं। इसी ग्रन्थ की पहली ढाल में कहा है न – "कहें सीख गुरु करुणाधार"।

भाई ! सत्य समझकर तू अपना लाभ ले ले, अपने आत्मा को भव दुःख से छुड़ाकर मोक्ष सुख प्राप्त करा ले। जगत के अज्ञानी लोग तो असत् की भी प्रशंसा करते हैं और सत् की भी निन्दा करते हैं परन्तु उससे तुझे क्या ? उससे कहीं सत्य बदल नहीं जायेगा। अरे ! जगत की दृष्टि का क्या मूल्य ? उसके माप का क्या मूल्य ? तेरी सत्य वस्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कदाचित् जगत के लोगों के ध्यान में न आवे और सत्य का मूल्य वे न जानें तो उससे कहीं तेरे गुण में कोई हानि थोड़े ही हो जायगी। तेरे गुणों को जगत के अभिनन्दन की क़ोई आवश्यकता नहीं है। जगत को सत्-असत् का बोध ही कहाँ है ? फिर उसके प्रमाण पत्र का क्या करना है ? धर्मी तो स्वयं अपने से ही निःशंक वर्तता हुआ मोक्षमार्ग में अकेला चला जाता है। पंच परमेष्ठी भगवन्तों ने उसके मोक्षमार्ग को स्वीकार किया है, फिर अब जगत स्वीकारे या न स्वीकारे, इससे क्या ?

बाहर में कर्मजनित सम्पदा अल्प हो या बहुत हो, लोगों में मान विशेष हो या कम हो, कोई बैर रखे या मित्रता रखे, इसके साथ आत्मा के हित का कोई सम्बन्ध नहीं है। अरे ! जहाँ राग के साथ भी चैतन्य का सम्बन्ध नहीं वहाँ अन्य की क्या कथा ? ऐसे आत्मा का वीतराग-विज्ञान अपूर्व है, वही "दुःखहारी सुखकार" है।

सम्यग्दृष्टि श्रावक को पाँच अणुव्रत के साथ दिग्व्रत-देशव्रत अनर्थदण्ड परित्यागव्रत ये तीन अणुव्रत होते हैं। वे व्रत में गुणकारक होने से "गुणव्रत" कहे जाते हैं। इसके साथ ही मुनिपने के अभ्यासरूप चार शिक्षाव्रत होते हैं। जिनका वर्णन 14 वें छन्द में करेंगे।

क्षेत्र की मर्यादा करके वह श्रावक अपने परिणाम में आरम्भ समारंभ को रोकता है। मर्यादा से बाहर के क्षेत्र सम्बन्धी किसी आरंभ परिग्रह का विचार वह नहीं करता, इतनी स्थिरता उसके परिणामों में हो गई है। किसी की गुप्त बात को प्रगट करे और उसे दुःख हो – ऐसी प्रवृत्ति अनर्थदण्ड है, श्रावक ऐसा नहीं करता। सामने वाले का भाव उसके पास रहा, मुझे क्यों किसी का अनिष्ट चिन्तवन करना। लड़ाई में अमुक हारे या अमुक जीते, ऐसी हार–जीत की निष्प्रयोजन कषाय धर्मी श्रावक नहीं करता, क्योंकि वह अनर्थकारी है, स्वयं को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उससे कोई प्रयोजन नहीं। अमुक जीव पापी है अतः उसका नुकसान हो जाय तो अच्छा – ऐसा विचार श्रावक को नहीं होता। इसी प्रकार हिंसक लड़ाई, वीभत्स सिनेमा, रेडियो, ताश पत्ता, विषय-कषाय पोषक उपन्यास इत्यादि में वह रस नहीं लेता। उसे तो अपने वीतरागी चैतन्य का रंग लग गया है, फिर भला अन्य अनर्थकारी पापकार्यों का रस कैसा ?

देखो तो सही यह परिणामों की मर्यादा ! जो सम्यग्दृष्टि व्रती हुआ उसके उपर्युक्त राग-द्वेष के विचार भी नहीं आते। मन में पाप के विचार न करे, वचन से भी पाप पोषक उपदेश न देवे, तथा काया से भी वैसे पाप कार्यों में न प्रवर्त्ते। इस प्रकार अनर्थकारी कार्यों का उसके मन-वचन-काय से त्याग हो गया है। अहा ! वह तो वीतरागमार्ग का पथिक है, उसके निर्दोष जीवन की क्या बात कहें।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

श्रावक के चार शिक्षाव्रतों का वर्णन

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के पश्चात् जो चारित्र पालन के लिए तत्पर हुआ है – ऐसे धर्मी श्रावक के पांच अणुव्रतों तथा तीन गुणव्रतों का वर्णन किया। अब चार शिक्षाव्रत कहते हैं :–

धरि उर समता भाव, सदा सामायिक करिये।
परव चतुष्टय मांहि, पाप तज प्रोषध धरिये।।
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहि अहारै।। १४।।

सामायिक :– श्रावक प्रतिदिन प्रातःमध्यान्ह-सायं चैतन्य में अपना चित्त एकाग्र करके, राग–द्वेष रहित समताभाव धारण करके सामायिक करता है। सामायिक के काल में श्रावक को भी साधु के समान माना गया है।

प्रोषधोपवास :– प्रतिमास दो अष्टमी और दो चतुर्दशी – इस प्रकार पर्वतिथियों में शक्ति अनुसार उपवास धारण करना, और आरंभ-समारंभ छोड़कर आत्मचिंतन करना प्रोषधोपवास है।

भोगोपभोग परिमाण :– भोग से विरक्त होकर सर्व संग परित्यागी होने की भावना होने पर भी जब तक साधुदशा नहीं होती तब तक श्रावक भोग-उपभोग की मर्यादा बांध लेता है और मर्यादित प्रतिज्ञा से अधिक परिग्रह का ममत्व त्याग देता है।

अतिथि संविभाग :– भोजन के समय श्रावक हमेशा मुनि को याद करके आहारदान की भावना करता है। मुनिराज पधारे तो मैं उन्हें आहार देकर बाद में भोजन करूँ – ऐसी भावना उसको सदा रहती है। मुनिराज के अतिरिक्त श्रावक अन्य साधर्मी धर्मात्माओं को भी आदर पूर्वक भोजन कराता है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

व्रतधारी श्रावक को ऐसे भाव सहज होते हैं, उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं, वे व्रत मुनिपने के अभ्यास रूप शिक्षा प्रदान करते हैं।

राग और चैतन्य की भिन्नता का जहाँ अनुभव हुआ वहीं राग द्वेष रहित वीतरागी समभावरूप सामायिक होती है। ज्ञान चेतना कहो या समभाव कहो। श्रावक जब प्रतिदिन दो घडी अपने परिणाम को चैतन्य में स्थिर रखने का प्रयोग करता है और निर्विकल्प होकर स्वभाव में उपयोग जोड़ता है तब उसे सामायिक होती है। श्रावक ध्यान धर के सामायिक में बैठा हो, और उस समय कोई उपसर्ग उस पर आ जाय तो वह डिगता नहीं। सामायिक के काल में श्रावक को वस्त्र से ढके हुए मुनि के समान कहा है। ऐसी सामायिक मोक्ष का कारण है। आजकल तो बहुत से लोग उसको भूलकर मात्र बाह्य में स्थिर बैठ जाने को सामायिक मान रहे हैं – उससे शुभराग होने पर पुण्य बँधेगा, परन्तु वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं होगा।

श्रावक को पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार बारह व्रत होते हैं। दूसरी "व्रतप्रतिमा" में उनका निरतिचार पालन होता है। पहली प्रतिमा "दर्शनप्रतिमा" है उसमें अष्ट मूल गुणों का सम्यक्त्व सहित निरतिचार पालन होता है। तत्पश्चात् परिणामों की शुद्धि अनुसार "सामायिक प्रतिमा" से लगाकर "उद्दिष्टत्याग प्रतिमा" (ऐलकपना) तक 11 प्रतिमायें होती हैं। ऐलक दशा उत्कृष्ट श्रावक दशा है, उसके बाद मुनिदशा होती है। ऐसी ग्यारह प्रतिमाओं के क्रमपूर्वक ही मुनिदशा होती हो – ऐसा कोई नियम नहीं है, क्षुल्लक-ऐलक हुए बिना भी कोई सम्यग्दृष्टि सीधा ही मुनिदशा में होने वाला चारित्र प्रकट करता है। मुनिदशा की तो बात परम अद्भुत है। वे तो परमेष्ठी पद में हैं – इस मुनि जीवन के महा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्द की क्या बात ? इन सबके मूल में धर्मी को वीतराग स्वभाव की दृष्टि निरन्तर लाभ करती है, उसी के बल पर वीतरागी धर्मों का वृक्ष फलता है।

जिसको मिथ्यात्वादि शल्यें हो उसको व्रत नहीं होते, कहा भी है "निःशल्योव्रती"। अरे ! व्रत में बहुत वीतरागता है, उसमें मिथ्यात्व माया और निदान कैसे ? पुण्य-फल की वांछा वहाँ नहीं होती। जैसे अन्दर मांस में लोहे की कील घुसी हो तो गाँठ कभी ठीक नहीं हो सकती, वैसे ही जिसे अन्दर में राग की या विषयों की रुचिरूप मिथ्यात्वादि शल्यें पड़ी हैं उसके राग-द्वेष की गाँठ कभी नहीं फूटती, अर्थात् वीतरागी समभावरूप सामायिकादि व्रत उसके नहीं होते। ज्ञान स्वभाव की अनुभूति से मिथ्यात्वादि और निन्दा या अपयश भी कैसा ? अहा ! पांचवें गुणस्थान में धर्मात्मा को अपयश, अनादेय या दुर्भग प्रकृति का उदय ही नहीं है। देखो तो सही, वीतराग परिणति की शक्ति ! जहाँ ऐसी वीतरागता वर्तती हो वहाँ अपयशादि का उदय किसमें आवे ? यह तो यश-अपयश से पार अपने समभाव में विराजता है।

धर्मात्मा को मुनिवरों के प्रति तथा साधर्मी श्रावकों के प्रति विशेष प्रेम होता है। वे भोजन के समय प्रतिदिन उन्हें स्मरण करके भावना भाते हैं कि कोई रत्नत्रय के साधक सन्त मुनिराज पधारें। ऐसे सन्त को भोजन कराने का प्रसंग बनने पर धर्मी के हृदय में अत्यन्त प्रसन्नता होती है, रत्नत्रय के प्रति उसकी भक्ति उछल पड़ती है।

इसप्रकार श्रावक को 12 व्रत होते हैं, उनमें परिणाम की जितनी शुद्धता है उतना तो निश्चयव्रत है और उसके साथ जितना शुभराग शेष रहा उसमें व्रत का उपचार है। इसप्रकार निश्चय व्यवहार का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वरूप जानना। शुद्धता तो मोक्ष का कारण है और शुभराग स्वर्ग का कारण है। दोनों भावों को भिन्न–भिन्न पहचानना और व्रतों का पालन करना – यही जीवन में कल्याण का मार्ग है।

बारह व्रतों का वर्णन करके अब उनके निरतिचार पालन करने का तथा अन्त समय में सल्लेखना धारण करने का उपदेश देते हैं।

व्रतों के निरतिचार पालन तथा सल्लेखना की प्रेरणा

बारह व्रत के अतिचार, पन पन न लगावै।
मरण समय सन्यास धारि, तसु दोष नशावै।।
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहँ तैं चय नर जन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावै।। १५।।

इसप्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक बारह व्रतों का पालन करना योग्य है। मोक्षशास्त्र के सातवें अध्याय में प्रत्येक व्रत के पांच-पांच अतिचार बतलाये हैं, उन अतिचारों से रहित निर्दोष व्रत का जीवन पर्यन्त पालन करना चाहिए तथा मरण समय आने पर विशेषरूप से सल्लेखना धारण करके कषायों को कृश करना चाहिए। श्रावकधर्म के पालन करने वाले जीव समाधिमरण करके उत्कृष्टपने सोलहवें देवलोक तक उत्पन्न होते हैं, और वहाँ से चलकर उत्तम मनुष्य होकर मुनिदशा अंगीकार करके वीतराग और केवलज्ञानी होकर शिव पद को पाते हैं।

आनन्दकन्द शुद्ध आत्मा काया और कषायों से भिन्न है, उसका जहाँ भान हुआ वहाँ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान तो हो ही जाते हैं, व्रत होवें अथवा न भी हों, तथापि मोक्षमार्ग तो प्रारम्भ हो ही जाता है। पश्चात् जैसे-जैसे आत्मशुद्धि बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे कषाय छूटती जाती है, तथा गुणस्थानानुसार व्रत – महाव्रत होते हैं। जब ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निश्चय हो जाता है कि अब इस देह की स्थिति लम्बे समय तक टिकने वाली नहीं है, मरण का समय निकट आ गया है, तब श्रावक सल्लेखना करता है, अर्थात् चैतन्य स्वभाव की उग्रता के बल से क्रम-क्रम करके कषायों का और आहार का त्याग करता है, और वीतरागी समभाव पूर्वक आराधकभाव सहित समाधिमरण करके स्वर्ग में जाता है। वहाँ स्वर्ग के दिव्य वैभव के बीच में भी सम्यग्दर्शन के बल से आत्मा की आराधना चालू रखते हुए उत्तम मनुष्य होता है, तत्पश्चात् मुनि होकर उत्कृष्ट आराधना से केवलज्ञान प्रकट करके मोक्षपद पाता है। मंगलमय वीतराग-विज्ञान का यह फल है। अतः हे भव्य जीवो ! इस मंगलमय और मंगलकरण वीतराग-विज्ञान का सदा प्रयत्न पूर्वक सेवन करो।

संसार भ्रमण करते हुए अज्ञानी जीव ने चैतन्य की शान्ति का स्वाद अनन्त काल में कभी नहीं चखा, तत्व को जाने बिना इसने बाह्य संयोगो में ही सदा सुख माना है। अरे भाई ! पंचम गुणस्थानी मत्स्य भी देवलोक के इन्द्र से अधिक सुखी है, तो तू विचार तो कर कि यह सुख किसका होगा ? कहाँ से आता होगा ? अरे ! यह सुख कहीं बाहर से नहीं आता, आत्मा स्वयंमेव सुख स्वभावी है उसका वह परिणमन है। सुखरूप से परिणमित उस पंचमगुणस्थानी जीव को इतनी महान शान्ति होती है कि चाहे जैसी प्रतिकूल परिस्थिति में भी उसको अनन्तानुबंधी अथवा अप्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया-लोभ तो रंचमात्र भी नहीं होता, तथा अन्य जो कषायें भूमिकानुसार विद्यमान हैं वे भी अधिक मन्द पड़ गई हैं। राग रहित चैतन्य वस्तु जो उसके अनुभव में आई है उसी में स्थिर होने से शान्ति बढ़ती है और कषायें टलकर वीतरागता होती है। इसको जाने बिना अन्य किसी रीति से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीव किंचित् भी सुख नहीं पा सकता। सम्यग्दर्शन बिना पंचमहाव्रतों का पालन करे तथापि आत्मा का सुख मिलने वाला नहीं, और सम्यग्दर्शन सहित होने पर व्रत पालन किए बिना भी आत्मा के अपूर्व सुख में मग्न रहता है।

सम्यग्दर्शन के बाद भी जो राग होता है वह तो बन्ध का ही कारण है और दुःख है, परन्तु उसी समय राग से भिन्न वर्तती हुई उसकी चेतना अपूर्व सुख में लीन है। अहा! ऐसे चेतनावन्त धर्मात्मा को कौन पहिचानेगा? कोई विरला भेद ज्ञानी ही उसको पहिचानेगा अर्थात् वही पहिचानेगा जो स्वयं मोक्षमार्ग का साधक होगा। बापू! अज्ञान में तो तेरा अनन्तकाल चला गया, अब तो इस चिन्तामणि जैसे मनुष्य अवतार और जिनशासन को पाकर तू अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान कर, अपनी अपार महिमा को जान, जिससे तुझे अपूर्व अतीन्द्रिय आनन्द हो. और तेरा आत्मा इस भव भ्रमण से छूटकर अनन्त काल के लिए सुखी हो जाए।

सम्यग्दर्शन के पश्चात् भी हिंसादि पापों से निवृत्त होकर व्रत–चारित्र के ग्रहण करने का उपदेश है। सम्यग्दृष्टि श्रावक को जितनी शुद्धता है उतनी संवर-निर्जरा है, और जितना राग है उतना आस्रव-बंध है। सम्यग्दृष्टी श्रावक को नियम से स्वर्ग का ही आयुष्य बँधता है, वह मरकर स्वर्ग में ही जाता है, अन्य किसी भी गति में नहीं जाता। स्वर्ग का अवतार राग का फल है, शुद्धता के फल में अन्तर की शान्ति मिलती है, संसार या भव नहीं मिलते, उसका फल तो मोक्ष है। श्रावक को कुछ राग शेष रह गया है इसलिए उसे स्वर्ग का अवतार मिला. वहाँ से निकलकर वह मनुष्य होगा, पश्चात् मुनि होकर सम्पूर्ण वीतरागी चारित्र प्रकट करके मोक्ष प्राप्त करेगा वीतरागी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चारित्र बिना कोई जीव मोक्ष नहीं पा सकता, और सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रकट किये बिना वीतरागी चारित्र नहीं हो सकता। अतः प्रथम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की आराधना करके पश्चात् सम्यक् चारित्र की आराधना करना चाहिए – ऐसा उपदेश है।

इसप्रकार छहढाला की चौथी ढाल में सम्यग्ज्ञान तथा श्रावक के व्रतों का वर्णन किया।

भवसिन्धु तरो

आतम रूप अनूपम अद्भुत,
याहि लखै भव सिंधु तरो।। आतम ।।
अल्पकाल में भरत चक्रधर,
निज आतम को ध्याय खरो।
केवलज्ञान पाय भवि बोधे,
तत्छिन पायौ लोक सिरो।। आतम ।।
या बिन समुझे द्रव्यलिंग मुनि,
उग्र तपन कर भार भरो।
नव ग्रीवक पर्यन्त जाय चिर,
फेर भवार्णव मांहि परो।। आतम ।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप,
ये ही जगत् में सार नरो।
पूरब शिव को गये जांहि अब,
फिर जैहै यह नियत करो।। आतम ।।
कोटि ग्रन्थ को सार यही है,
ये ही जिनवाणी उचरो।
"दौल" ध्याय अपने आतम को,
मुक्ति-रमा वत बेग वरो।। आतम ।।

दौलतराम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

वीतराग–विज्ञान : प्रश्नोत्तर

1.प्रश्न :– छहढाला के मंगलाचरण में किसको नमस्कार किया गया है ?

उत्तर :– वीतराग–विज्ञान को।

2. पहली ढाल में क्या कहा गया है ?

उत्तर :– जीव चारगति में कैसे दु:ख भोगता है यह बताया गया है।

3.प्रश्न :– दूसरी ढाल में क्या कहा गया है ?

उत्तर :– दु:ख के कारणरूप मिथ्यात्व को छोड़ने का उपदेश दिया गया है।

4. प्रश्न :– तीसरी ढाल में क्या कहा गया है ?

उत्तर :– सम्यक्त्व की महिमा समझाकर उसकी आराधना करने को कहा गया है।

5. प्रश्न :– चौथी ढाल में किसका उपदेश है ?

उत्तर :– सम्यग्ज्ञान की आराधना और देशव्रत का उपदेश है।

6. प्रश्न :– सम्यग्ज्ञान कैसा है ?

उत्तर :– स्व–पर को प्रकाशित करने के लिए सूर्य–समान है।

7. प्रश्न :– सम्यगान कब होता है ?

उत्तर :– सम्यग्दर्शन के साथ ही होता है।

8. प्रश्न :– सम्यग्दर्शन–ज्ञान दोनों एक साथ होने पर भी ज्ञान की भिन्न आराधना करने को क्यों कहा है ?

उत्तर :– क्योंकि अभी केवलज्ञान को साधना शेष है – इसलिए।

9. प्रश्न :– दर्शन की आराधना कब पूर्ण होती है ?

उत्तर :– क्षायिकसम्यक्त्व प्रगट होने पर।

10. प्रश्न :– ज्ञान की आराधना कब पूर्ण होती है ?

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :– केवलज्ञान प्रगट होने पर।

11. प्रश्न :– मोक्षमार्ग में सच्चा ज्ञान किसे कहा जाता है ?

उत्तर :– जो स्व–पर को जाने और मोक्ष को साधे, उसे सच्चा ज्ञान कहा जाता है।

12. प्रश्न :– पदार्थ का धर्म क्या है ?

उत्तर :– वस्तु के गुण–पर्याय ही उसके धर्म हैं।

13. प्रश्न :– मोक्ष प्राप्त करने के लिए किसका सेवन करना चाहिए ?

उत्तर :– सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र का सेवन करना चाहिए।

14. प्रश्न :– शुभराग अथवा पुण्य का सेवन करने के लिए क्यों नहीं कहा ?

उत्तर :– क्योंकि वह मोक्ष का कारण नहीं है।

15. प्रश्न :– एक वस्तु का धर्म दूसरी वस्तु के कारण वास्तव में होता है क्या ?

उत्तर :– नहीं, वस्तु के धर्म पर की अपेक्षा रखते ही नहीं।

16. प्रश्न :– एक वस्तु का धर्म दूसरी वस्तु में जाता है क्या ?

उत्तर :– नहीं, वस्तु के धर्म वस्तु में ही तन्मय रहते हैं।

17. प्रश्न :– चारित्र के बिना मोक्ष हो सकता है क्या ?

उत्तर :– नहीं हो सकता।

18. प्रश्न :– सम्यग्दर्शन–ज्ञान बिना चारित्र होता है ?

उत्तर :– नहीं होता।

19. प्रश्न :– सम्यक्श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान की आराधना में क्या विशेषता है ?

उत्तर :– दोनों की आराधना एक साथ प्रारम्भ होती है, किन्तु पूर्णता एकसाथ नहीं होती, क्रम पड़ता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

20. प्रश्न :– राग को कौन जानता है ?

उत्तर :– राग से भिन्न ज्ञान ही राग को जानता है।

21. प्रश्न :– राग और ज्ञान कैसे हैं ?

उत्तर :– दोनों का स्वभाव अत्यन्त भिन्न है। राग में चेतनपना नहीं, ज्ञान स्व–पर का चेतन है।

22. प्रश्न :– राग को जानते समय ज्ञान उसमें तन्मय होता है क्या ?

उत्तर :– नहीं, राग को जानने वाला ज्ञान राग से भिन्न ही रहता है।

23. प्रश्न :– राग का आत्मा से क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर :– राग वास्तव में स्वतत्त्व नहीं है, मंगलरूप नहीं है।

24. प्रश्न :– वीतराग–विज्ञान का क्या स्वरूप है ?

उत्तर :– वह स्वतत्त्व है, मंगलरूप है, जगत् में साररूप है।

25. प्रश्न :– मिथ्यात्वसहित होनेवाला शुभाचरण कैसा है ?

उत्तर :– वह मिथ्या आचरण है, संसार का कारण है।

26. प्रश्न :– उस शुभराग से जीव को सुख तो मिलता है न ?

उत्तर :– नहीं, राग से किंचित् भी सुख नहीं मिलता, दुःख ही मिलता है।

27. प्रश्न :– जीव अनादि से क्या कर रहा है ?

उत्तर :– अज्ञान से संसार के दुःख ही भोग रहा है।

28. प्रश्न :– क्या वह कभी स्वर्ग में भी गया है ?

उत्तर :– हाँ, अनन्तबार गया है।

29. प्रश्न :– स्वर्ग में सुखी क्यों नहीं हुआ ?

उत्तर :– वहाँ सम्यग्दर्शन नहीं हुआ इसलिए।

30. प्रश्न :– जीव के लिए अपूर्व क्या है ?

उत्तर :– सम्यग्दर्शन की प्राप्ति।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

31. प्रश्न :– संसार की चतुर्गति में भ्रमण से जो थका हो, उसे क्या करना ?

उत्तर :– सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान।

32. प्रश्न :– जो मोक्षसुख को चाहता हो उसे क्या करना चाहिए ?

उत्तर :– सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट करना चाहिए।

33. प्रश्न :– सम्यग्दर्शन और ज्ञान की प्राप्ति कहाँ से होती है ?

उत्तर :– अपने में से ही होती है, अन्य के पास से नहीं।

34. प्रश्न :– देव–शास्त्र–गुरु क्या कहते हैं ?

उत्तर :– "तू हमारे सामने मत देख" अपने सामने देख।

35. प्रश्न :– सम्यग्दर्शन के साथ में क्या होता है ?

उत्तर :– सम्यग्ज्ञान और अनन्तानुबंधी के अभावरूप चारित्र का अंश होता है।

36. प्रश्न :– सम्यग्दर्शन के साथ ही मुनिदशा हो – ऐसा नियम है ?

उत्तर :– नहीं, भजनीय है, नियम नहीं; हो अथवा न भी हो।

37. प्रश्न :– मुनिदशा में सम्यग्दर्शन हो – ऐसा नियम है ?

उत्तर :– हां, सम्यग्दर्शन के बिना मुनिपद नहीं होता।

38. प्रश्न :– यहाँ सम्यग्ज्ञान को किसका कार्य कहा ?

उत्तर :– सम्यग्ज्ञान को सम्यग्दर्शन का कार्य कहा।

39. प्रश्न :– सम्यग्ज्ञान को शुभराग का कार्य क्यों नहीं कहा ?

उत्तर :– क्योंकि राग से सम्यग्ज्ञान नहीं होता, राग तो सम्यक्ज्ञान से विरुद्ध जाति का है।

40. प्रश्न :– सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का क्या लक्षण है ?

उत्तर :– आत्मा का स्वरूप जैसा है वैसा श्रद्धान करना सम्यक्दर्शन का लक्षण है, और जैसा है वैसा जानना सम्यग्ज्ञान का लक्षण है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

41. प्रश्न :– धर्मात्मा का स्वसंवेदन कैसा होता है ?
उत्तर :– अतीन्द्रिय आनन्दरूप और मोक्ष का कारण होता है।
42. प्रश्न :– ऐसा स्वसंवेदन कौन से गुणस्थान में होता है ?
उत्तर :– चौथे गुणस्थान से वह प्रारम्भ हो जाता है।
43. प्रश्न :– स्वसंवेदन होने पर क्या होता है ?
उत्तर :– एक साथ ही अनन्त गुणों में निर्मलता होने लगती है।
44. प्रश्न :– सम्यग्ज्ञान क्या करता है ?
उत्तर :– सबको जानकर, परभावों से भिन्न आत्मा को साधता है।
45. प्रश्न :– किसको देखने से सम्यग्दर्शन होता है ?
उत्तर :– आत्मा के सच्चे स्वरूप को देखने से सम्यग्दर्शन होता है।
46. प्रश्न :– सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनन्द की खान कहाँ है ?
उत्तर :– जड़ में नहीं, राग में नहीं, आत्मा में हैं।
47. प्रश्न :– आत्मा का शुद्धस्वरूप कैसा है ?
उत्तर :– राग के मिश्रण से रहित, शुद्ध ज्ञानमय है।
48. प्रश्न :– सम्यग्दृष्टि वस्तु को कैसा जानता है ?
उत्तर :– सामान्य–विशेषस्वरूप जानता है।
49. प्रश्न :– सम्यग्दृष्टि को संदेह होता है ?
उत्तर :– आत्मा के स्वरूप में अथवा अनुभव में संदेह नहीं होता।
50. प्रश्न :– सम्यग्ज्ञानी को क्या नहीं होता ?
उत्तर :– उसको शंकादि दोष या मरणादि भय नहीं होते।
51. प्रश्न :– मेरे अनन्तभव होंगे – ऐसी शंका किसे होती है ?
उत्तर :– मिथ्यादृष्टि को होती है, सम्यग्दृष्टि को नहीं।
52. प्रश्न :– ज्ञान के साथ राग होता है ?
उत्तर :– अल्पराग हो सकता है, अनन्तभव धारण करने पड़ें – ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राग नहीं होता।

53. प्रश्न :– ज्ञान के अस्तित्व में राग का अस्तित्व है ?

उत्तर :– नहीं, ज्ञान ज्ञानपने में है, रागपने में नहीं।

54. प्रश्न :– धर्मी को जो अल्पराग है वह कैसा है ?

उत्तर :– वह भी बन्ध का ही कारण है, मोक्ष का नहीं।

55. प्रश्न :– अपूर्व सम्यग्ज्ञान क्या करता है ?

उत्तर :– वह संसार चक्र को बन्द करके मोक्षमार्ग को चालू करता है।

56. प्रश्न :– मोक्ष को साधने की कला क्या है ?

उत्तर :– सम्यग्ज्ञान ही मोक्ष को साधने की अपूर्व कला है।

57. प्रश्न :– जन्म-मरण के दुःख को मिटाने वाला क्या है ?

उत्तर :– सम्यग्ज्ञान जन्म-मरण मिटाने वाला परम अमृत है।

58. प्रश्न :– वीतरागी भेदज्ञान कब तक भाना ?

उत्तर :– केवलज्ञान प्राप्त होने तक भेदज्ञान को भाना।

59. प्रश्न :– सम्यग्दर्शन-ज्ञान को कारण-कार्यपना किस प्रकार है ?

उत्तर :– सहचर अपेक्षा से कारण-कार्यपना है।

60. प्रश्न :– रागादि को सम्यग्ज्ञान का कारण कयों नहीं कहा ?

उत्तर :– राग अशुद्ध है, राग के अभाव में भी सम्यग्ज्ञान रहता है, अतः राग उसका कारण नहीं है।

61. प्रश्न :– जैसे श्रद्धा-ज्ञान में कारण-कार्यपने का व्यवहार है, वैसा अन्य कोई उदाहरण है ?

उत्तर :– हाँ है, अतीन्द्रिय ज्ञान को अतीन्द्रिय सुख का कारण कहा है।

62. प्रश्न :– इस कारण-कार्य में समयभेद भी है ?

उत्तर :– नहीं, समयभेद नहीं है, दोनों एक ही समय में होते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

63. प्रश्न :– सम्यक्चारित्र का मूल कारण कौन है ?

उत्तर :– सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान को चारित्र का मूल कारण कहा है, किन्तु राग को नहीं कहा।

64. प्रश्न :– जीव ने सम्यग्ज्ञान के बिना अब तक क्या किया ?

उत्तर :– कोटिजन्म में तप तपा, परन्तु शान्ति नहीं पाई ।

65. प्रश्न :– सम्यग्ज्ञान कैसा है ?

उत्तर :– वह वीतराग-विज्ञान है, तीनलोक में सार है।

66. प्रश्न :– जगत में सुख का कारण कौन है ?

उत्तर :– ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई सुख का कारण जगत में नहीं है।

67. प्रश्न :– पुण्य को सुख का कारण क्यों नहीं कहा ?

उत्तर :– क्योंकि उसके फल में संयोग मिलते हैं, सुख नहीं।

68. प्रश्न :– बुद्धि को कहाँ जोड़ने से हित होता है ?

उत्तर :– अद्भुत आत्मस्वरूप में बुद्धि को जोड़ने से हित होता है।

69. प्रश्न :– केवलज्ञान कैसा है ?

उत्तर :– अद्भुत अचिन्त्य महिमा से भरपूर है और महान अतीन्द्रिय सुख सहित है।

70. प्रश्न :– केवलज्ञान की पहिचान करने पर जीव को क्या लाभ होता है ?

उत्तर :– केवलज्ञान को पहिचानने पर अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव की प्रतीति सहित सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख का वेदन होता है।

71. प्रश्न :– चौथे गुणस्थान में होने वाला सम्यग्ज्ञान कैसा है ?

उत्तर :– वह भी आनन्दमय है, उसकी भी अपूर्व महिमा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

72. प्रश्न :– क्या मति–श्रुतज्ञान भी प्रत्यक्ष है ?

उत्तर :– आत्मसन्मुखता होने पर स्वानुभूति के समय वह भी प्रत्यक्ष है।

73. प्रश्न :– ऐसा प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय ज्ञान गृहस्थावस्था में होता है ?

उत्तर :– हाँ, धर्मी गृहस्थ को ऐसा ज्ञान होता है।

74. प्रश्न :– आत्मा के जानने में इन्द्रियों का निमित्त है ?

उत्तर :– नहीं, क्योंकि आत्मा अतीन्द्रिय है।

75. प्रश्न :– आत्मा के जानने में राग निमित्त है ?

उत्तर :– नहीं, राग से भिन्न ज्ञान ही आत्मा को जानता है।

76. प्रश्न :– मोक्षमार्ग का प्रारंभ कौन से ज्ञान से होता है ?

उत्तर :– अतीन्द्रिय ज्ञान से ही मोक्षमार्ग का प्रारम्भ होता है।

77. प्रश्न :– आत्मा को किस प्रकार देखें ?

उत्तर :– आत्मा आँख से नहीं दिखती, इन्द्रियातीत ज्ञान से अनुभव में आती है।

78. प्रश्न :– आत्मा का साक्षात्कार कब होता है ?

उत्तर :– जब उसका अत्यन्त रस और महिमा आवे तब होता है।

79. प्रश्न :– पैसे में से जीव को कभी सुख मिलने वाला है ?

उत्तर :– नहीं, उसमें तो सुख है ही नहीं, तो फिर मिलेगा कहाँ से।

80. प्रश्न :– अन्तर में एकाग्र होकर अनुभव करने पर क्या होता है ?

उत्तर :– अतीन्द्रिय आनन्दरस की धारा उल्लसित होती है।

81. प्रश्न :– सिंह की आत्मा को अनुभव हो सकता है ?

उत्तर :– हाँ, सिंह, हाथी, वानर, सर्प आदि को भी अनुभव हो सकता है। महावीर भगवान के आत्मा ने सिंह के भव में आत्मानुभव किया था और पारसनाथ भगवान के जीव ने हाथी के भव में किया था।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

82. प्रश्न :– हाथी आदि को पूर्वभव का जातिस्मरण हो सकता है ?
उत्तर :– हाँ, जातिस्मरण हो सकता है और आत्मज्ञान भी।
63. प्रश्न :– ऐसा ज्ञान किस हाथी को हुआ था ?
उत्तर :– त्रिलोकमण्डल हाथी को, तथा पारसनाथ के जीव को भी ऐसा ज्ञान हुआ था।
84. प्रश्न :– सभी साधक जीवों को कौन सा ज्ञान होता है ?
उत्तर :– सम्यक् मति-श्रुतज्ञान सभी साधक जीवों को नियम से होते हैं।
85. प्रश्न :– मोक्षमार्ग में किसका मूल्य है ?
उत्तर :– स्व-संवेदनरूप वीतराग-विज्ञान की परम महिमा है, उससे मोक्षमार्ग सधता है, अतः उसी का मूल्य है।
86. प्रश्न :– केवलज्ञान किनको होता है ?
उत्तर :– सिद्ध तथा अरहन्त भगवन्तों को।
87. प्रश्न :– केवलज्ञानी भगवन्त कितने हैं ?
उत्तर :– अनन्तानन्त हैं।
88. प्रश्न :– परमावधि, सर्वावधि, विपुलमति-मनः पर्याय किनको होता है ?
उत्तर :– चरम शरीरी मुनिवरों को ही होता है।
89. प्रश्न :– जो परमात्मा हो गए वे पहले कैसे थे ?
उत्तर :– वे भी पहले बहिरात्मा थे।
90. प्रश्न :– बाद में वे परमात्मा कैसे हुए ?
उत्तर :– वे ही अन्तरात्मा होकर परमात्मा हुए।
91. प्रश्न :– उन्हें अन्तरात्मापना और परमात्मापना किसप्रकार हुआ?
उत्तर :– शुद्धोपयोग से अर्थात् वीतराग-विज्ञान से।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

92. प्रश्न :– "णमो अरिहंताणं" बोलते समय क्या ख्याल में आना चाहिए ?

उत्तर :– उस समय सर्वज्ञस्वभावी आत्मा की प्रतीति आना चाहिए।

93. प्रश्न :– इस समय मनुष्यलोक में कितने अरहन्त भगवान हैं ?

उत्तर :– सीमन्धरादि आठ लाख अरहन्त भगवान विचरते हैं।

94. प्रश्न :– राग को केवलज्ञान का कारण मानें तो ?

उत्तर :– तो केवलज्ञान भी रागवाला ठहरे ! क्योंकि कारण और कार्य एक जाति के होते हैं।

95. प्रश्न :– केवलज्ञान का कारण कौन है ?

उत्तर :– राग और ज्ञान की भिन्नता का अनुभव करना केवलज्ञान का कारण है।

96. प्रश्न :– केवलज्ञान का स्वीकार इन्द्रिय ज्ञान से हो सकता है क्या ?

उत्तर :– नहीं, वह तो अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता से ही होता है।

97. प्रश्न :– सर्वज्ञ की सच्ची पहिचान कब हुई कही जाय ?

उत्तर :– अपने में भेदज्ञान होकर सम्यग्ज्ञान हो जाय तब।

98. प्रश्न :– उस सम्यग्ज्ञान के साथ क्या होता है ?

उत्तर :– उसके साथ राग रहित वीतरागी सुख है।

99. प्रश्न :– धर्मात्मा के मति-श्रुतज्ञान कैसे हैं ?

उत्तर :– वे केवलज्ञान की जाति के हैं, राग से भिन्न हैं।

100. प्रश्न :– सम्यग्ज्ञान कैसा है ?

उत्तर :– केवलज्ञान के साथ केलि करनेवाला, मोक्ष सुख देने वाला परम अमृत है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

101. प्रश्न :– जीवन किसके लिए है ?

उत्तर :– स्वहित साधने के लिए ही मुमुक्ष का जीवन है।

102. प्रश्न :– ज्ञान में बहुत सुख, और विषयों में अल्प सुख ऐसा है क्या ?

उत्तर :– नहीं, सुख तो सम्यग्ज्ञान में ही है, विषयों में किंचित् भी सुख नहीं है।

103. प्रश्न :– आत्मा का ज्ञान कैसा है ?

उत्तर :– आनन्द सहित है, जिसमें आनन्द नहीं वह ज्ञान नहीं।

104. प्रश्न :– जीव सिद्ध कैसे होते हैं ?

उत्तर :– भेद-ज्ञान के अभाव से।

105. प्रश्न :– जो जीव बँधे हैं वे किससे बँधे हैं ?

उत्तर :– भेद-ज्ञान के अभाव से।

106. प्रश्न :– यह जानकर करना क्या चाहिए ?

उत्तर :– अच्छिन्न धारा से भेद-ज्ञान को निरन्तर भाना चाहिए।

107. प्रश्न :– भेद-ज्ञानी जीव क्या करता है ?

उत्तर :– आत्मा के आनन्द में केलि करता-करता मुक्ति में जाता है।

108. प्रश्न :– सम्यग्ज्ञान के प्रसाद से जीव को क्या होगा ?

उत्तरः– वह अशरीरी होकर सिद्धालय में रहेगा, फिर कभी शरीर या संसार में नहीं आवेगा।

109. प्रश्न :– सम्यग्ज्ञान बिना पर पदार्थों से जीव को सुख मिल सकता है ?

उत्तर :– नहीं, सम्यग्ज्ञान ही आत्मा को सुख का कारण है।

110. प्रश्न :– केवलज्ञान की प्रतीति करने वाले को राग का कर्तृत्त्व रहता है ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :– नहीं राग से भिन्न पड़कर ही केवलज्ञान की प्रतीति होती है।

111. प्रश्न :– तीन काल तीन लोक को जान लेने पर भी राग-द्वेष क्यों नहीं होता ?

उत्तर :– क्योंकि ज्ञान का स्वभाव राग-द्वेष करना नहीं है।

112. प्रश्न :– ज्ञान के स्वाद में कैसा रस है ?

उत्तर :– वीतरागी चैतन्यरस है, अतीन्द्रिय आनन्द है।

113. प्रश्न :– इस स्वाद को कौन जान सकता है ?

उत्तर :– ज्ञान के स्वाद को सम्यग्दृष्टि ही जान सकता है।

114. प्रश्न :– ज्ञानी को किसके बल से निर्जरा होती है ?

उत्तर :– राग रहित ज्ञान चेतना के बल से निर्जरा होती है।

115. प्रश्न :– ज्ञानचेतना कैसी है ?

उत्तर :– मोक्षसुख देने वाली और संसार का नाश करने वाली है।

116. प्रश्न :– तप और निर्जरा में कष्ट है या आनन्द ?

उत्तर :– तप और निर्जरा महान आनन्दरूप हैं, उनमें कष्ट है ही नहीं।

117. प्रश्न :– ज्ञानी का शुभराग तो मोक्ष का कारण है न ?

उत्तर :– नहीं, उसको भी ज्ञान ही मोक्ष का कारण है, राग नहीं।

118. प्रश्न :– ज्ञान को राग के समय मोक्ष का साधन वर्तता है ?

उत्तर :– हाँ ज्ञानी को राग के समय राग से भिन्न शुद्ध ज्ञान परिणमन मोक्ष का कारण है।

119. प्रश्न :– अज्ञानी के शुभराग के समय मोक्ष का साधन है ?

उत्तर :– नहीं, क्योंकि उसे शुद्धात्मा का अनुभव नहीं है।

120. प्रश्न :– चारित्र का मूल कारण क्या है ?

उत्तर :– शुद्धात्मा ज्ञान और श्रद्धान, चारित्र का मूल कारण है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

121. प्रश्न :– चैतन्य रस चखने के लिए क्या करना चाहिए ?
उत्तर :– वास्तविक लगन से उसका अभ्यास बराबर करना चाहिए।
122.प्रश्न :– शास्त्र पठन का वास्तविक फल क्या है ?
उत्तर :– ज्ञानमय शुद्धात्मा की अनुभूति करना।
123.प्रश्न :– अनन्तबार मनुष्यभव पाकर भी जीव सुखी क्यों नहीं हुआ ?
उत्तर :– क्योंकि, मनुष्य होकर भी इसने कभी आत्मा की पहिचान नहीं की।
124.प्रश्न :– शुभराग से अज्ञान अंधकार टल सकता है ?
उत्तर :– नहीं, सम्यग्ज्ञान प्रकाश से ही अज्ञान अंधकार टलता है।
125.प्रश्न :– शुभराग में सुख भले न हो, परन्तु उसमें दुःख भी तो नहीं है ?
उत्तर :– राग स्वयं कषाय आकुलता और दुःखरूप ही है।
126.प्रश्न :– आत्मा का जीवन क्या है ?
उत्तर :– उपयोग ही आत्मा का जीवन है। "जीवः उपयोगलक्षणः"।
127.प्रश्न :– जिनवरदेव कथित पदार्थ कैसे हैं ?
उत्तर :– द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप हैं।
128.प्रश्न :– पुनर्भव किसको होता है ?
उत्तर :– संसारी जीव को पुनर्भव होता है।
129.प्रश्न :– पुनर्भव किसको नहीं होता ?
उत्तर :– मुक्त जीव को (परमात्मा को) पुनर्भव नहीं होता।
130.प्रश्न :– उनको पुनर्भव क्यों नहीं होता ?
उत्तर :– क्योंकि उनके मोह नहीं है और मरण भी नहीं है।
131.प्रश्न :– जैनतत्व के अभ्यास का फल क्या है !

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :– बस ! आत्मा का अनुभव करना।

132.प्रश्न :– जैनतत्व क्या बतलाता है ?

उत्तर :– पर से भिन्न अपना चैतन्यतत्व अपने में दिखलाता है।

133.प्रश्न :– शुद्ध जीवतत्व कैसा है ?

उत्तर :– पर से भिन्न, राग से भिन्न शुद्ध उपयोग स्वरूप जीव है।

134.प्रश्न :– अजीवतत्व की श्रद्धा हुई – ऐसा कब कहा जाय ?

उत्तर :– अजीव को अपने से भिन्न जाने तब।

135.प्रश्न :– पुण्य–पाप आस्रव बंध की श्रद्धा हुई – ऐसा कब कहा जाय ?

उत्तर :– उनको परभावरूप जानकर ज्ञान उनसे भिन्न अपने आत्मा का अनुभव करे तब।

136.प्रश्न :– संवर-निर्जरा मोक्ष तत्व की श्रद्धा हुई – ऐसा कब कहा जाय ?

उत्तर :– शुद्ध जीव की ओर लक्ष और झुकाव करके संवर निर्जरा प्रगट करें तब।

137.प्रश्न :– नवतत्व की सच्ची श्रद्धा किसप्रकार होती है ?

उत्तर :– शुद्धात्मा की सन्मुखता से सच्ची तत्व श्रद्धा होती है।

138.प्रश्न :– सुख के लिए तन-धन-वैभव आदि कुछ कार्यकारी हैं क्या ?

उत्तर :– नहीं, सुख के लिए सम्यग्ज्ञान ही कार्यकारी है।

139.प्रश्न :– शास्त्रों ने और संतों ने किसका बखान किया है ?

उत्तर :– सम्यग्ज्ञानरूप ने भेद-ज्ञान का बखान किया है, प्रशंसा की है।

140.प्रश्न :– करोड़ों उपायों से (मर करके भी) आत्मा को पहिचानो, इसका क्या अर्थ है ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :– चैतन्यतत्व का सर्वोत्कृष्ट रस जागृत करके आत्मा को पहिचानना।

141.प्रश्न :– करोड़ों प्रतिकूलताओं के बीच में आत्महित कैसे हो सकता है ?

उत्तर :– क्योंकि आत्मा की लगन में बाह्य प्रतिकूलताऐं बाधक नहीं हैं। इसलिए उनके बीच भी आत्महित हो सकता है।

142.प्रश्न :– अनुकूलता हो तो संभव है आत्मा की साधना सरल हो जाय ?

उत्तर :– नहीं, बाह्य सामग्री आत्महित में कोई सहायता नहीं करती।

143.प्रश्न :– शरीर जलता रहे और आत्मा शान्ति में स्थित रहे – ऐसा बन सकता है ?

उत्तर :– हाँ, क्योंकि दोनों तत्वों की क्रिया अत्यन्त भिन्न है।

144.प्रश्न :– सच्चा विवेक क्या है ?

उत्तर :– स्व-पर का भेदज्ञान करना सच्चा विवेक है।

145.प्रश्न :– महान अविवेक क्या है ?

उत्तर :– ज्ञान के साथ राग और जड़ की एकता ही महान अविवेक है।

146.प्रश्न :– आत्महित के उपाय कितने हैं ?

उत्तर :– आत्मा को पहिचानकर अनुभव करना, बस यही एक उपाय है।

147.प्रश्न :– गृहस्थ निर्लेप रह सकता है ?

उत्तर :– हाँ, धर्मात्मा का ज्ञान राग से निर्लेप रहता है।

148.प्रश्न :– विषयों की चाहरूपी आग में जलता हुआ जीव कैसे बचे?

उत्तर :– सम्यग्ज्ञानरूपी मेघधारा से वह आग बुझाकर।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

149.प्रश्न :– बाह्य विषयों में अथवा राग में सुख मानने वाला कैसा है?
उत्तर :– वह अपने आत्मा को अज्ञान की आग में जलाने वाला है।
150.प्रश्न :– शुभराग से क्या होता है ? क्या मिलता है ?
उत्तर :– शुभराग से पुण्य होता है, जिसके फलस्वरूप बाह्य विषय मिलते हैं, किन्तु आत्मा का सुख नहीं मिलता।
151.प्रश्न :– "आत्महित के लिए समय नहीं मिलता" कोई ऐसा कहे तो ?
उत्तर :– तो उसको आत्म रस नहीं, अर्थात् आत्मा प्रिय नहीं है।
152.प्रश्न :– जीव ने सबसे अधिक अवतार किस गति में किए हैं ?
उत्तर :– तिर्यंचगति में किए हैं।
153.प्रश्न :– जीव ने स्वर्ग और नर्क के अवतार कितनी बार किए हैं?
उत्तर :– सामान्यपने अनन्तबार किए हैं।
154.प्रश्न :– सामान्यपने यह जीव मनुष्य अवतार कब पाता है ?
उत्तर :– अनन्तबार देव-नारकी हो तब एकबार मनुष्य होता है।
155.प्रश्न :– ऐसा दुर्लभ मनुष्यभव पाकर क्या करना ?
उत्तर :– दूसरे हजार काम छोड़कर आत्मा को पहिचानना।
156.प्रश्न :– मनुष्य होकर भेदज्ञान न करे तो ?
उत्तर :– तो वह शोभा को प्राप्त नहीं होता, पशु जैसा है।
157.प्रश्न :– तिर्यंच हो और भेद ज्ञान करले तो ?
उत्तर :– तो वह देव जैसा शोभायमान होता है, प्रशंसनीय है।
158.प्रश्न :– लाखों बातों में सारभूत बात क्या है ?
उत्तर :– जगत के द्वन्द-फन्द को छोड़कर आत्मा का ध्यान करना।
159.प्रश्न :– मिथ्यादृष्टि किसमें प्रसन्न होता है ?
उत्तर :– अनुकूल संयोग में और राग में।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

160.प्रश्न :– सम्यग्दृष्टि किसमें प्रसन्न होता है ?

उत्तर :– वीतरागी चैतन्य शान्ति के वेदन में।

161.प्रश्न :– व्रत किसको होते हैं ?

उत्तर :– जिसको सम्यग्दर्शन ज्ञानपूर्वक वीतरागता बढ़ती है उसको होते हैं।

162.प्रश्न :– निर्धनता सघनता, अथवा यश-अपयश किसका कार्य है।

उत्तर :– पूर्वकर्म का कार्य है, ज्ञान का नहीं।

163.प्रश्न :– धर्मी को भी बाहर में प्रतिकूलता हो सकती है क्या ?

उत्तर :– हाँ, पूर्व पाप के उदय में प्रतिकूलता भी होती है।

164.प्रश्न :– प्रतिकूलता के समय धर्मी को धर्म में शंका पड़ती है ?

उत्तर :– नहीं, क्योंकि ज्ञान तो उस संयोग से भिन्न ही है।

165.प्रश्न :– धर्मात्मा के पास कौन सी महान सम्पदा है ?

उत्तर :– सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति रूपी महान आत्म सम्पदा धर्मात्मा के पास निरन्तर रहती है।

166.प्रश्न :– सम्यग्दर्शन से कैसी सम्पदा मिलती है ?

उत्तर :– तीनलोक में श्रेष्ठ ऐसी सिद्धपद की सम्पदा सम्यग्दर्शन से मिलती है।

167.प्रश्न :– सम्यग्दृष्टि जीव किसप्रकार सुखी है ?

उत्तर :– अपने चैतन्य परिणमन से ही सुखी है, पुण्य से नहीं।

168.प्रश्न :– संसार में पुण्य-पाप के फल कैसे हैं ?

उत्तर :– चलती फिरती छाया जैसे हैं, एक समान नहीं रहते।

169.प्रश्न :– आत्मा को इष्ट-अनिष्ट कौन है ?

उत्तर :– ज्ञान इष्ट है, मोह अनिष्ट है, पर वस्तु इष्ट-अनिष्ट नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

170.प्रश्न :– जीव को सुख देने वाला कौन है ?

उत्तर :– राग से भिन्न ज्ञान ही सुख देने वाला है।

171.प्रश्न :– सब बातों का सार क्या है ?

उत्तर :– आत्मा को जानकर उसका ध्यान करना।

172.प्रश्न :– जगत के द्वन्द-फन्द छोड़ो – इसमें क्या आया ?

उत्तर :– पुण्य और पाप दोनों इसमें आ गये।

173.प्रश्न :– सुख-दुःख कहाँ है ?

उत्तर :– जीव की ज्ञानपरिणति में सुख और मोहपरिणति में दुःख है।

174.प्रश्न :– धर्मी की परिणति कैसी है ?

उत्तर :– उसमें राग और ज्ञान भिन्न पड़ गया है।

175.प्रश्न :– हर्ष-शोक होना कब मिटे ?

उत्तर :– चिदानन्द तत्व के सन्मुख होने पर हर्ष-शोक मिटता है।

176.प्रश्न :– ज्ञानी को भी हर्ष-शोक तो होता है ?

उत्तर :– उस समय भी हर्ष-शोक से भिन्न ज्ञानधारा उसको वर्तती है।

177.प्रश्न :– सम्यग्ज्ञान के आठ अंग कौन से हैं ?

उत्तर :– योग्यकाल, विनय, उपधान, बहुमान, अनिन्हव, शब्दशुद्धि, अर्थशुद्धि और तदुभयशुद्धि।

178.प्रश्न :– अज्ञानी के लिए सबसे ऊँचा स्थान कौनसा है ?

उत्तर :– नवमीग्रैवयक (देवलोक)।

179.प्रश्न :– वहाँ वह कितना सुख पाता है ?

उत्तर :– लेशमात्र भी नहीं, क्योंकि उसने आत्मा को जाना नहीं है।

180.प्रश्न :– सम्यग्दृष्टि होने के बाद जीव नवग्रैवयक में जाता है ?

उत्तर :– नहीं, वह तो एक दो भव में मुक्ति प्राप्ति कर लेता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

181.प्रश्न :– मिथ्यादृष्टि देवलोक में जाकर भी दुःखी क्यों हुआ ?
उत्तर :– क्योंकि सुख का सच्चा कारण उसके पास नहीं था।
182.प्रश्न :– भगवान आत्मा किसप्रकार प्रसिद्ध होता है ?
उत्तर :– स्वानुभूति में प्रकट होता है।
183.प्रश्न :– उस स्वानुभूति में क्या समाता है ?
उत्तर :– उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों समाते हैं, परन्तु राग उसमें नहीं समाता।
184.प्रश्न :– स्वानुभूति कैसे होती है ?
उत्तर :– अपनी ही उपयोग शक्ति से प्रगट होती है।
185.प्रश्न :– शुद्धात्मा का सच्चा श्रवण किया – ऐसा कब कहा जाय?
उत्तर :– उसके सन्मुख होकर वैसा भाव प्रगट करे तब।
186.प्रश्न :– ज्ञानी की सच्ची सेवा कौन कर सकता है ?
उत्तर :– जो उसकी अनुभूति को पहिचाने, वही कर सकता है।
187.प्रश्न :– वह अनुभूति किस विधि से पहिचानी जाय ?
उत्तर :– ज्ञान के लक्ष से, राग से नहीं।
188.प्रश्न :– चारित्र आराधना सच्ची कब होती है ?
उत्तर :– सम्यग्दर्शन–ज्ञानपूर्वक होती है, उसके बिना नहीं।
189.प्रश्न :– श्रावक को चारित्र होता है ?
उत्तर :– हाँ, सम्यग्दृष्टि रावक को देशचारित्र होता है।
190.प्रश्न :– श्रावक के कितनी कषायों का अभाव हो जाता है ?
उत्तर :– अनन्तानुबंधी की चार तथा अप्रत्याख्यान की चार इसप्रकार आठ कषायों का श्रावक के अभाव हो जाता है। सर्वार्थसिद्धि के देव से उसकी शान्ति अधिक होती है।
191.प्रश्न :– गृहस्थदशा में अधिक से अधिक कौनसा गुणस्थान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता है ?

उत्तर :– पाँचवा होता है। इससे ऊपर के गुणस्थान दिगम्बर मुनि का होता है।

192.प्रश्न :– मुनिपना न हो सके तो क्या करना ?

उत्तर :– उसकी भावनापूर्वक श्रावक के चारित्र का आचरण करना।

193.प्रश्न :– अरिहन्तदेव के मार्ग में चारित्र किसे कहा गया है ?

उत्तर :– "संज्ञस्य चारिगम्" – सम्यग्ज्ञानी के चारित्र को चारित्र कहा गया है।

194.प्रश्न :– वह चारित्र कैसा है ?

उत्तर :– आत्मरूप है, रागरूप नहीं।

195.प्रश्न :– अण्डा क्या है ?

उत्तर :– वह त्रस पंचेन्द्रिय जीव है। उसका भोजन मांसाहार ही है।

196.प्रश्न :– अहिंसा धर्म का सच्चा स्वरूप कहाँ है ?

उत्तर :– अरिहंत के मार्ग में ही अहिंसा का सच्चा स्वरूप है।

197.प्रश्न :– अहिंसा का सच्चा पालन कौन कर सकता है ?

उत्तर :– जिसने अरिहन्त के वीतरागमार्ग को जाना हो वही कर सकता है।

198.प्रश्न :– दु:खी जीव को दु:खमुक्त करने के लिए गोली से मार दें तो भी क्या दोष है ?

उत्तर :– तो वह भी हिंसा ही है। ऐसा करनेवालों को अहिंसाधर्म के स्वरूप का ज्ञान नहीं है।

199.प्रश्न :– सिंह, सर्प, बिच्छू आदि हिंसक जीवों को मारने में क्या दोष है ?

उत्तर :– वह भी हिंसा ही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

200.प्रश्न :– धर्मी जीव, जिसमें त्रस हिंसा होती हो वह औषधि सेवन करें या नहीं ?

उत्तर :– नहीं, (ऐसी विद्या भी वह पढ़े नहीं) भयंकर रोग हुआ हो, मांस का एक टुकड़ा या अण्डा आदि खाने से वह मिट सकता हो तथापि धर्मी जीव (अरे, जिज्ञासु जीव भी) प्राण जावे तो जावे परन्तु उन्हें खा सकता नहीं। मद्य-मधु भी अभक्ष्य हैं, उन्हें भी नहीं खा सकता।

201.प्रश्न :– जैनधर्म में अहिंसा की परिभाषा क्या है ?

उत्तर :– रागादि भावों की उत्पत्ति ही हिंसा है, उससे चैतन्य प्राण का हनन होता है।

202.प्रश्न :– प्रशस्त राग और अप्रशस्त राग – इन दोनों का क्या स्वरूप हैं ?

उत्तर :– यह दोनों ही कषाय हैं अर्थात् हिंसा हैं।

203.प्रश्न :– वीतराग भावरूप अहिंसा धर्म कैसा है ?

उत्तर :– सर्वजीवों का हितकारी है, इष्ट है, श्रेष्ठ है और वही भगवान का इष्ट उपदेश है।

204.प्रश्न :– परवस्तु के कारण से जीव को हिंसा होती है ?

उत्तर :– नहीं, अपने कषायभाव से ही हिंसा होती है।

205.प्रश्न :–हिंसा में किसका हनन होता है ?

उत्तर :– जीव के अपने चैतन्यप्राण का हनन होता है।

206.प्रश्न :– क्या दूसरे जीवों का मरण या जीवन यह जीव कर सकता है ?

उत्तर :– उनका जीवन-मरण उनकी आयु के आधीन है।

207.प्रश्न :– हिंसा-अहिंसा का सच्चा स्वरूप कौन जान सकता है?

उत्तर :– जो रागादि और चैतन्यप्राण को भिन्न-भिन्न जानता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

208.प्रश्न :– सबसे महान हिंसा कौन सी है ?

उत्तर :– राग और चैतन्य को एक माननेरूप मिथ्यात्व ही सबसे बड़ी हिंसा है। वही चैतन्यप्राण का हनन करती है।

209.प्रश्न :– अहिंसा धर्म का मूल स्तम्भ क्या है ?

उत्तर :– राग के किसी अंश को चैतन्य में न मिलाना – ऐसा भेदज्ञान ही अहिंसा धर्म का मूल है।

210.प्रश्न :– सर्वज्ञ के ज्ञान में जीव कैसा ज्ञात हुआ है ?

उत्तर :– सर्वज्ञ ने जीव को सदा उपयोग लक्षणरूप देखा है।

211.प्रश्न :– चैतन्यभाव और रागादिभाव में क्या अन्तर है ?

उत्तर :– प्रकाश और अन्धकार की तरह दोनों ही अत्यन्त भिन्न हैं, एक नहीं।

212.प्रश्न :– जीव का किसमें तन्मयपना है ?

उत्तर :– जीव अपने उपयोगस्वरूप में तन्मय है।

213.प्रश्न :– वह उपयोग कैसा है ?

उत्तर :– स्वतः सिद्ध सत् है, किसी के द्वारा रचित नहीं है।

214.प्रश्न :– उस उपयोग का शुद्ध परिणमन कैसा है ?

उत्तर :– वह अहिंसारूप है, धर्म है, मोक्षमार्ग है।

215.प्रश्न :– पांच भावों में "उपयोग" कौन सा भाव है ?

उत्तर :– उपयोग पारिणामिक भाव है।

216.प्रश्न :– उस उपयोग का शुद्ध परिणमन कौन-सा भाव है ?

उत्तर :– वह क्षायिकादिभाव रूप है।

217.प्रश्न :– रागादिभाव कौन से भाव हैं ?

उत्तर :– रागादिभाव औदयिक भाव हैं।

218.प्रश्न :– उपयोग में कौन-कौन से तत्व समाते हैं ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :– जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

219.प्रश्न :– रागादिभाव में कौन-कौन से तत्व आते हैं ?

उत्तर :– आस्रव, बन्ध, पुण्य और पाप।

220.प्रश्न :– उपयोग के साथ आत्मा की कैसी व्याप्ति है ?

उत्तर :– समव्याप्ति है, दोनों में से एक हो वहाँ दूसरा होवे ही।

221.प्रश्न :– उपयोग बिना जीव कभी होता है ?

उत्तर :– नहीं।

222.प्रश्न :– राग बिना जीव कभी होता है ?

उत्तर :– हाँ।

223.प्रश्न :– राग को आत्मा का स्वलक्षण मान लें तो क्या दोष है ?

उत्तर :– राग का नाश होने पर आत्मा के नाश का प्रसंग आएगा।

224.प्रश्न :– राग बिना जीव जी सकता है ?

उत्तर :– हां, सिद्ध भगवन्त राग बिना ही अनन्त सुखी जीवन जीते हैं।

225.प्रश्न :– राग को जीव का लक्षण मानने में कौन सा दोष है ?

उत्तर :– अव्याप्ति दोष है, ऐसा मानने पर अनन्त सिद्ध और अरिहन्त अजीव ठहरेंगे।

226.प्रश्न :– चारित्र दशा कैसी है ?

उत्तर :– परम शान्त है, उसमें कषाय नहीं, वीतराग भाव है ?

227.प्रश्न :– वह चारित्र किसका कारण है ?

उत्तर :– वह स्वर्ग के भव का नहीं, अपितु मोक्ष का कारण है।

228.प्रश्न :– मुनि को छठे गुणस्थान में कितनी कषायों का अभाव है?

उत्तर :– मुनि की बारह कषायें छूट गई हैं।

229.प्रश्न :– अव्रत सम्यग्दृष्टि की कितनी कषायें छूट गई हैं ?

उत्तर :– अनन्तानुबंधी की चार कषायें छूट गई हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

230.प्रश्न :– गृहस्थ को मुनिदशा योग्य चारित्र होता है क्या ?
उत्तर :– नहीं, किन्तु गृहस्थ को मुनिदशा योग्य चारित्र की भावना होती है।
231.प्रश्न :– श्रावक के कितने व्रत होते हैं ?
उत्तर :– पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, कुल बारह व्रत होते हैं।
232.प्रश्न :– श्रावक की कितनी प्रतिमा होती हैं ?
उत्तर :–ग्यारह होती हैं। भूमिका प्रमाण एक से लगाकर ग्यारह तक होती हैं।
233.प्रश्न :– जैनमुनि को निर्ग्रन्थ क्यों कहा है ?
उत्तर :–जैनमुनि के भावरूप तथा द्रव्यरूप ग्रन्थि नहीं होती।
234.प्रश्न :– हाथी, सिंह आदि तिर्यंचों को सामायिक होती है ?
उत्तर :– हाँ, पंचम गुणस्थान वाले तिर्यंचों को सामायिक होती है।
235.प्रश्न :– तिर्यंच सामायिक कैसे करते होंगे ?
उत्तर :– उनकी समता भावरूप आत्मपरिणति ही सामायिक है।
236.प्रश्न :– मनुष्यों के कितने गुणस्थान होते हैं ?
उत्तर :–चौदह।
237.प्रश्न :– तिर्यंचों के कितने गुणस्थान होते हैं ?
उत्तर :– पाँच।
238.प्रश्न :– देवों और नारकियों के कितने गुणस्थान होते हैं ?
उत्तर :– चार।
239.प्रश्न :– जीव की शोभा किसमें है ?
उत्तर :– वीतराग भाव में जीव की शोभा है, राग में शोभा नहीं है।
240.प्रश्न :– जिसके देव-गुरु-धर्म खोटे हों, उसको व्रत होते हैं ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :– नहीं।

241.प्रश्न :– सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् क्या करना चाहिए ?

उत्तर :– परिणाम की शक्ति अनुसार चारित्र अंगीकार करना चाहिए।

242.प्रश्न :– अज्ञानी के व्रत-तप मोक्षमार्ग हैं क्या ?

उत्तर :–नहीं, वे बालव्रत और बालतप हैं, मोक्षमार्ग कदापि नहीं।

243.प्रश्न :– धर्मी जीव धन के लिए अन्याय, अनीति, चोरी करेगा ?

उत्तर :– नहीं।

244.प्रश्न :– सम्यग्दर्शन बिना व्रत-चारित्र होना मानें तो ?

उत्तर :– तो उसे जैनधर्म के मोक्षमार्ग के क्रम का भी बोध नहीं है।

245.प्रश्न :– सम्यग्दर्शन बिना शुभभाव से हित का पंथ हाथ में आ सकता है क्या ?

उत्तर :– नहीं, हित का पंथ तो सम्यग्दर्शन से ही हाथ में आ सकता है।

246.प्रश्न :– परमार्थ व्रत क्या है ?

उत्तर :–जितनी शुद्धता हुई, वह परमार्थ व्रत है।

247.प्रश्न :– व्यवहार व्रत क्या है ?

उत्तर :–शुद्धता के साथ होने वाला शुभराग।

248.प्रश्न :–सिद्धसुख कैसा है ?

उत्तर :–स्वानुभूति के अलावा अन्य कहीं उसका नमूना नहीं है।

249.प्रश्न :– सामायिक के समय श्रावक कैसा है ?

उत्तर :– सामायिक के समय श्रावक भी साधु जैसा ही माना गया है।

250.प्रश्न :– भोजन का काल होने पर श्रावक कैसी भावना करे ?

उत्तर :–मुनिराज पधारें तो पहले उन्हें आहार देकर मैं बाद में भोजन करूँ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

251.प्रश्न :– धर्मी श्रावक प्रतिदिन क्या करता है ?

उत्तर :–प्रतिदिन सामायिक का प्रयोग करता है।

252.प्रश्न :–वह सच्ची सामायिक क्या है ?

उत्तर :–वह वीतरागभाव रूप है और मोक्ष का कारण है।

253.प्रश्न :– सामायिक कैसे होती है ?

उत्तर :– चैतन्यस्वभाव को उपयोग में स्थिर करके।

254.प्रश्न :–धर्मी श्रावक समाधिमरण करके कहाँ तक जाता है ?

उत्तर :– सोलहवें स्वर्ग तक।

255.प्रश्न :– पश्चात् वहाँ से निकलकर क्या करता है ?

उत्तर :–मनुष्य होकर मुनि बनकर मोक्ष प्राप्त करता है – यही मंगलमय वीतराग-विज्ञान का फल है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपनी सुधि.....

अपनी सुधि भूल आप, आप दुःख उपायो।
ज्यौं शुक नभचाल बिसरि, नलिनी लटकायो।। टेक।।
चेतन अविरुद्ध शुद्ध, दर्शबोधमय विशुद्ध।
तजि जड़ रस-परस-रूप, पुद्गल अपनायो।। 1।।
इन्द्रिय सुख-दुख में नित्त, पाग राग-रुष में चित्त।
दायक भवविपति वृन्द, बन्ध को बढ़ायो।। 2।।
चाह-दाह दाहै, त्यागो न ताह चाहै।
समता-सुधा न गाहै, जिन निकट जो बतायो।। 3।।
मानुषभव सुकुल पाय, जिनवर शासन लहाय।
"दौल" निजस्वभाव भज, अनादि जो न ध्याओ।। 4।।

– कविवर पण्डित दौलतराम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

हमारे यहाँ प्राप्त महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

ग्रन्थ	मूल्य	ग्रन्थ	मूल्य
मोक्षशास्त्र	50.00	कालजयी व्यक्तित्व बनारसीदास	10.00
सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका भाग-1	40.00	समयसार अनुशीलन भाग-3 (पू.)	10.00
समयसार	35.00	विदाई की बेला	10.00
प्रवचनसार (श्री जयसेनाचार्य)	32.00	आ. कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार	10.00
पद्मनन्दि पंचविंशतिका	32.00	छहढाला/वारसाणुवेक्खा	8.00
प्रवचनसार (अ. अमृतचन्द्र)	30.00	श्रावकधर्मप्रकाश	8.00
सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका भाग-2 (उत्तरार्द्ध)	30.00	बारहभावना : एक अनुशीलन	8.00
सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका भाग-2		वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	8.00
(पूर्वार्द्ध)/समयसार नाटक	25.00	शीलवान सुदर्शन/उपसर्गजयी सुकमाल	8.00
सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका भाग-3	25.00	अध्यात्म संदेश/आप कुछ भी कहो	7.00
अष्टपाहुड़/मोक्षमार्ग प्रकाशक	20.00	ती.भ. महावीर और उनका सर्वोदयतीर्थ	7.00
समयसार अनुशीलन, भाग-1/भाग-2	20.00	भगवान नेमिनाथ/भगवान शान्तिनाथ	7.00
समयसार कलश टीका	20.00	चौबीस तीर्थंकर पूजन विधान	7.00
समाधितंत्र प्रवचन/नयप्रज्ञापन	20.00	विदेहक्षेत्रस्थ विद्यमान विशांति ती. पूजा	7.00
प्रवचन रत्नाकर भाग-8/जिनेन्द्र अर्चना	20.00	सुखी होने का उपाय भाग-1/भाग-2	7.00
प्रवचन रत्नाकर भाग-3/योगसार	20.00	सुखी होने का उपाय भाग-3/भाग-4	7.00
आ. अमृतचन्द्र : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	20.00	सुखी होने का उपाय भाग-5	7.00
नियमसार/बृहद् द्रव्यसंग्रह	18.00	जिनवरस्य नयचक्रम	6.00
सिद्धचक्रविधान/अमृताशीति	18.00	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	6.00
परमभावप्रकाशक नयचक्र	16.00	णमोकार महामंत्र/अहिंसा के पथ पर	6.00
कार्तिकेयानुप्रेक्षा/भावदीपिका	16.00	जैनधर्म की कहानियाँ भाग-8	6.00
पुरुषार्थसिद्धयुपाय	15.00	भगवान पार्श्वनाथ/मुक्ति का संघर्ष	6.00
प्रवचन रत्नाकर भाग-2/भाग-6	15.00	विचार के पत्र विकार के नाम	6.00
पंचास्तिकायसंग्रह/संस्कार/धवलासार	15.00	दशलक्षण विधान/बीस तीर्थंकर विधान	6.00
इन भावों का फल क्या होगा	15.00	अर्द्धकथानक/बनारसीविलास	5.00
इन्द्रध्वज विधान/गुणस्थान विवेचन	15.00	परीक्षामुख/अध्यात्म रत्नत्रय	5.00
प्रवचनरत्नाकर भाग-1/भावना शतक	13.00	अपूर्व अवसर/सामान्य श्रावकाचार	5.00
आत्मा ही है शरण/ज्ञानगोष्ठी	12.00	वीतराग-विज्ञान प्रवचन भाग-3/भाग-4	5.00
सत्य की खोज	12.00	क्रमबद्धपर्याय/गागर में सागर	5.00
पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	11.00	आ. कुन्दकुन्द और उनके पंचपरमागम	5.00
कल्पद्रुम मण्डल विधान	11.00	पंचपरमेष्ठी पूजन विधान	5.00
प्रवचनरत्नाकर भाग-4/भाग-5/भाग-7	10.00	शांति विधान/रत्नत्रय पूजन विधान	5.00
भक्तामर प्रवचन/आत्मानुशासन	10.00	भक्ति सरोवर/युगपुरुष कानजीस्वामी	5.00
तत्त्वज्ञान तरंगिणी/धर्म के दशलक्षण	10.00	वीतराग-विज्ञान प्रवचन भाग-2	4.00
रामकहानी/साधना के सूत्र	10.00	वीतराग-विज्ञान पाठ. भाग-2/भाग-3	4.00